मासिक समाचार पत्र

सीमित प्रसार के लिये

लोकविद्या पंचायत

● सूचना युग में बराबरी के विचार के पुनर्निर्माण का पत्र ●
● लोकविद्याधर समाज के पुनर्संगठन का वैचारिक आधार पत्र ●
● पूँजी आधारित समाज के स्थान पर ज्ञान आधारित समाज के निर्माण का विचार पत्र। ●

अंक 3, पृष्ठ : 8 | जुलाई 2010 | सहयोग राशि : 5 रुपये

वाराणसी में पहली बिजली ज्ञान पंचायत

किसान और कारीगर संगठनों की अनूठी पहल

शिखा श्रीवास्तव

पिछले कुछ वर्षों से प्रदेश में बिजली आपूर्ति का कोई निश्चित समय और अवधि निर्धारित नहीं है, इसकी वजह से सामान्य लोगों को काफी परेशानियाँ उठानी पड़ रही हैं। सबसे ज्यादा परेशानी लोकविद्याधरों को हो रही है। बिजली के अभाव में किसान, कारीगर, छोटे-छोटे दुकानदारों की आमदनी पर सीधे असर आ रहा है और वे दो जून की रोटी जुटाने में भी अक्षम होते जा रहे हैं। किसान खेत में पानी नहीं दे पा रहा और कारीगर घंटों बेकार बैठा रहता है। इन्हीं समस्याओं से जूझने के लिए 23 मई 2010 को दोपहर 12.00 बजे विद्या आश्रम, सारनाथ पर एक बिजली ज्ञान पंचायत बुलाई गई। इस पंचायत का उद्देश्य बिजली और समाज से सम्बन्धित उन सभी जानकारियों और समझ को सामने लाने का था जिससे देश के सभी नागरिकों को बराबर-बराबर बिजली मिले।

इस बिजली ज्ञान पंचायत ने किसान और कारीगर संगठनों को एक मंच पर लाकर खड़ा किया। लगभग सौ व्यक्तियों ने इस पंचायत में भाग लिया। लोकविद्या पंचायत अखबार, भारतीय किसान यूनियन वाराणसी, बुनकर वेलफेयर संघर्ष समिति एवं जन जागृति ट्रस्ट इन चार संगठनों की संयुक्त भागीदारी में आयोजित इस पंचायत में वाराणसी, चन्दौली, जौनपुर, मिर्जापुर, भदोही, मऊ के किसान संगठनों के पदाधिकारियों तथा वाराणसी के कारीगरों ने शिरकत की।

दो सत्र में चली इस पंचायत के पहले सत्र में बिजली की समस्याओं और अब तक हुए संघर्षों पर चर्चा हुई। दूसरे सत्र में एक समन्वय समिति के गठन की प्रक्रिया सम्पन्न की गई। पहले सत्र की अध्यक्षता संयुक्त रूप से भा0 कि0 यू0 के वाराणसी मण्डलाध्यक्ष जगदीश सिंह यादव और जन जागृति कल्याण ट्रस्ट के अध्यक्ष मुन्नूलाल रावत ने की। दूसरे सत्र की अध्यक्षता संयुक्त रूप से राजेन्द्र शास्त्री, भा0 कि0 यू0 प्रमुख महासचिव उ. प्र. व रहमतुल्ला अंसारी,

बुनकर वेलफेयर संघर्ष समिति के अध्यक्ष ने की। सत्रों का संचालन क्रमशः सुनील सहस्त्रबुद्धे, अध्यक्ष विद्या आश्रम व सन्तोष कुमार संविज्ञ, सचिव भा0 कि0 यू0 वाराणसी ने किया।

पंचायत के पहले सत्र का संचालन करते हुए सुनील सहस्त्रबुद्धे ने कहा कि हम यहाँ इसलिए इकट्ठा हुए हैं कि बिजली के सवाल पर एक नये आधार पर संघर्ष की तैयारी कर सकें। भारतीय किसान यूनियन ने अपनी पहली लड़ाई बिजली के सवाल से ही शुरू की थी। उसके बाद बिजली के सवाल पर अनेक लड़ाईयाँ लड़ी गयीं। कुछ जीतीं भी गयीं लेकिन अब समय आ गया है कि बिजली के सवाल को नये ढंग से घेरा जाय। बिजली एक राष्ट्रीय संसाधन है और इसको बनाने में सभी आम लोगों का पैसा लगता है। इसलिए इस पर सबका बराबर का हक है और यह सबको बराबर मिलनी चाहिए। उन्होंने कहा कि इस

... शेष पेज २ पर

लोकविद्याधर समाज क्या माँग करें?

अमीर हो या गरीब, गाँव या शहर
बिजली का बँटवारा हो सबको बराबर
खुशहाल होंगे तभी किसान और कारीगर

1. गाँवों और कारीगर बस्तियों को दिन में रोजगार से सम्बन्धित काम के लिये कम से कम 6 घंटा निरंतर बिजली मिले। पूरे दिन में कम से कम 16 घंटे बिजली दी जाय।
2. बिजली मिलने का समय पहले से निर्धारित और घोषित हो और उसका पालन किया जाय।
3. सरकारी संस्थानों, कालोनियों, विश्वविद्यालय व बड़े उद्योगों आदि में लागू बिजली दर की आधी दर पर गाँवों और कारीगर बस्तियों को बिजली दी जाय।
4. मार्च 2010 तक का किसानों और कारीगरों का सारा बिजली बकाया शुल्क माफ हो।
5. किसान और कारीगरों के लिये बिजली का हिस्सा आरक्षित हो।
6. बिजली की घोर अव्यवस्थाओं के चलते किसानों और कारीगरों का भारी नुकसान हुआ है। इनके अपने संगठन इस नुकसान का अनुमान बनाने का अभियान चलायें और सरकार से मुआवजा माँगें।
7. बिजली के उत्पादन व वितरण की नीति बनाने में किसान और कारीगर संगठनों की राय शामिल की जाय।

बिहार में भा० कि० यू० का विस्तार

संगठन विस्तार के मुद्दे को लेकर 18 मई 2010 को विधायक निवास पटना में भारतीय किसान यूनियन की राष्ट्रीय पंचायत का आयोजन हुआ। इस पंचायत में पंजाब, हरियाणा, मध्यप्रदेश, उत्तराखण्ड, उत्तर प्रदेश व बिहार के किसान शामिल हुए। बिहार प्रदेश अध्यक्ष रामानुज प्रसाद सिंह के संयोजकत्व में यह पंचायत बुलाई गई थी। पंचायत का मुख्य विषय बिहार में भा0 कि0 यू0 का विस्तार रहा।

भा0 कि0 यू0 के राष्ट्रीय अध्यक्ष चौ0 महेन्द्र सिंह टिकैत ने बिहार में संगठन के विस्तार की घोषणा की और कहा कि भारत कृषि प्रधान देश है। बड़े अचम्भे की बात है कि एक तरफ 8 हैं तो दूसरी तरफ 2 हैं। 8 वाले 2 वालों को नहीं पीट सकते क्योंकि सर्वश्रेष्ठ बल बुद्धि बल है। बुद्धि बल से ही संगठन है। थोड़ा चिंतन विचार जरूरी है। संगठन से ही किसान का भला होना है इसलिए संगठन बढ़ाओ। स्वास्थ्य खराब होने के बावजूद भी मैं बिहार के भाईयों का हौसला बुलन्द करने के लिए आया हूँ। यहाँ पर नया-नया संगठन है। यहाँ के किसान संघर्षों को पूरा-पूरा सहयोग दिया जायेगा। रामानुज जी पूरी मेहनत के साथ बिहार में संगठन बनाओ।

उत्तर प्रदेश के प्रदेश अध्यक्ष श्री भानु प्रताप सिंह ने कहा कि हमारे नेता अंग्रेजों से ज्यादा अत्याचारी हो गये हैं। आज से 22 साल पहले महात्मा टिकैत को एक संगठन बनाना पड़ा जिससे किसानों का भला हो सके। यदि भारत के किसान कांग्रेस, भा.ज.पा, स.पा., राजद इत्यादि दलों के नेताओं के पीछे चलना छोड़कर भा0 कि0 यू0 का संगठन मजबूत करें तो सारी समस्यायें दूर हो जायेंगी। बिहार में रामानुज महान योद्धा बनकर आये हैं निश्चित रूप से दृढ़ इच्छाशक्ति के द्वारा बिहार में मजबूत संगठन बनेगा।

उत्तर प्रदेश के प्रमुख महासचिव श्री राजेन्द्र शास्त्री ने कहा कि सन् 1947 में राजनैतिक स्वतंत्रता मिली। उस समय लोग यह सोच भी नहीं रहे होंगे कि स्वतंत्रता मिलने के बाद भोजन नहीं मिलेगा, कपड़ा नहीं मिलेगा, छत नहीं मिलेगी। दूसरे महात्मा के रूप में महात्मा टिकैत उपस्थित हैं। आप प्रत्येक गाँव और मजरे में किसान यूनियन का संगठन करें आपकी हर समस्याओं का समाधान होगा।

पूर्वांचल अध्यक्ष श्री दीवान चन्द्र चौधरी ने कहा कि वास्तव में बिहार के लोग काफी क्रांतिकारी रहे हैं। आज किसान के नाम पर, गरीब के नाम पर हम संगठित नहीं हैं। यहाँ की जमीन उपजाऊ है। यहाँ का नौजवान मेहनती है। चाहे वह पंजाब जाता हो, दिल्ली जाता हो, बम्बई जाता हो। आने वाले दिनों में समस्यायें और बढ़ेंगी, अतः यहाँ का किसान भी संगठित होकर लड़ाई लड़ेगा।

बलिया से मान्धाता सिंह ने कहा कि आने वाला वक्त किसानों का है। पंजाब के लोगों को ज्यादा संख्या में बैठे देखकर मुझे लगता है कि भगत सिंह का सपना भी कहीं न कहीं दिखलायी पड़ रहा है। दूसरे महात्मा, महात्मा टिकैत इस देश में हैं। वे भी आये हैं। किसानों की आजादी का संघर्ष छिड़ेगा ही।

श्री अली जमीर खां जिला अध्यक्ष मिर्जापुर उत्तर प्रदेश ने कहा कि 15 अगस्त 1947 को देश आजाद हो गया लेकिन किसानों के साथ बड़ा दगा किया गया। संगठन में और मजबूती लायें। तब बिहार ही नहीं केन्द्र सरकार की भी हैसियत नही है कि आपका सामना कर सके।

... शेष पेज २ पर

जनगणना में जाति : सामाजिक चिंतकों से वार्ता

राम अधार गिरि,
समाजवादी चिंतक, चंदौली

यह सच्चाई है कि जातियाँ हैं। राजनीति के केन्द्र में जाति है तो जातिवाद का असर भी है। यह भी सच है कि जाति बंधन ढीले हो रहे हैं और जातियाँ टूट भी रही हैं। भारत में अंग्रेजों के समय सन् 1871 में पहली बार जातीय जनगणना हुई थी। उसके बाद सन् 1931 में जो जनगणना हुई उसमें भी जातियों की गणना की गई थी। अंग्रेजों ने राज करने के लिए अपने हित के लिए जातियों की जनगणना को इस्तेमाल किया। जिसका असर यह हुआ कि समाज में जाति के नये रूप अस्तित्व में आ गये। इसी काम में भारतीय समाज में सांस्कृतिक हलचल भी पैदा हुई और लोगों ने जातिगत ऊँच-नीच के खिलाफ आंदोलन छेड़ दिया। उस दौरान यह अभियान छेड़ा गया कि इतर जाति के लोग ब्राह्मण और क्षत्रिय होने का दावा पेश करें। लोगों ने जातियों का मनोबल ऊँचा उठाने के लिए उच्च जाति के नाम व उपनाम लगाने या अपनाने का अभियान छेड़ दिया। जनेऊँ पहनने लगे। समाज में प्रतिष्ठा हासिल करने का यह उस समय का एक तरीका रहा। बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में आजाद भारत में ठीक इसके विपरीत दिशा में अभियान चले। सरकारों की कमजोर वर्गों के पहचान की नीति के चलते तथा आरक्षण की सुविधा के चलते बहुत सी जातियों ने स्वयं को अनुसूचित जाति व जनजाति की श्रेणी में लाने का अभियान छेड़ा। फिर से जाति का रूप पूरी तरह बदल गया।

राजनीति, शिक्षा व रोजगार के क्षेत्र में जब जाति ही लाभ पाने का आधार बन गयी है तब सच्चाई सामने लाने के लिए जातीय जनगणना होनी ही चाहिए। जातीय जनगणना से ब्राह्मण व क्षत्रियों का अहम् टूटेगा।

लोहिया जी का कहना था कि जाति तोड़ो। लेकिन उनका कहना था जब तक पिछड़ी और अनुसूचित जाति के लोग आगे बढ़कर जातियाँ नही तोड़ेंगे तब तक ये जातियाँ नहीं टूटेंगी।

जातीय जनगणना का आरक्षण की नीति पर व्यापक प्रभाव पड़ेगा। मण्डल आयोग के लागू होने के बाद से कई उच्च जातियों ने पिछड़ी जाति व अनुसूचित जाति में जाने की दौड़ शुरू कर दी है। इस जातीय जनगणना में बढ़ी हुई संख्या सामने आ जायेगी। आरक्षण के सवाल पर संघर्ष हो सकता है। सर्वाधिक पिछड़े वर्ग की जातियों के लिए अनुसूचित जाति में नाम लिखवाने का रास्ता खुल गया है। पिछड़े वर्ग के नेतृत्व के लिए यही चुनौती भी हो सकती है।

एकतरफ जातियों और उपजातियों में एकीकरण की क्रियायें चल सकती हैं वहीं दूसरी तरफ विभाजन की क्रियाएं भी चल सकती हैं। बावजूद इसके जातीय जनगणना होनी चाहिए क्योंकि इससे पिछड़ी व अनुसूचित जातियों को फायदा ही होने वाला है।

राम लच्छन राजभर, समाजवादी चिंतक,
बरियासनपुर, चिरईगाँव, वाराणसी

जातीय जनगणना करने से जाति उन्माद और बढेंगे, जाति को और बढ़ावा मिलेगा। इससे कम संख्या वाली जाति के समक्ष समस्या खड़ी हो जायेगी। अगर जाति के आधार पर जनगणना होती है तो

... शेष पेज २ पर

पेज 1 का शेष

जनगणना में जाति...

राम लच्छन राजभर

जाति के आधार पर आरक्षण लागू होना चाहिए। जिस जाति की जितनी संख्या है उस अनुपात में उसको आरक्षण दिया जाय ताकि वह भी राष्ट्र की मुख्य धारा से जुड़ सके। जहाँ आर्थिक व शारीरिक सम्पन्नता है वहाँ अस्पृश्यता का प्रश्न ही नही है, लेकिन आर्थिक व शारीरिक रूप से विपन्नता है वहाँ अस्पृश्यता काफी प्रबल है। इसलिए भेद-भाव की इस खाई को पाटने के लिए जाति के सवाल के साथ ही साथ आर्थिक बराबरी भी होनी चाहिए। जाति खत्म होनी चाहिए परन्तु जाति खत्म हो न हो जातियों के बीच में खाई पहले खत्म होना चाहिए, सभी इन्सान हैं। न कोई ऊँच है और न कोई नीच और न ही अछूत है। राजनीतिक दल जातीय उन्माद बढ़ा रहें हैं, इससे राष्ट्र का नुकसान होगा। आर्थिक बराबरी भेद को मिटा देगी। अतः सरकार को चाहिए कि आर्थिक कार्यक्रम को चलाकर सम्पन्न व विपन्न की खाईं को मिटाये। हाईस्कूल के बाद रोजगार परक शिक्षा हो जिससे बेरोजगारी खत्म हो जिससे समस्त जाति भेद खत्म हो जायेगा। शिक्षा और चिकित्सा पूरी तरह मुफ्त हो।

सांसद निधि, विधायक निधि व ग्राम प्रधान निधि इत्यादि को समाप्त कर प्रत्येक मतदाता के लिए मासिक निधि कायम कर दी जाय, इससे अस्पृश्यता भी खत्म होगी और आर्थिक रूप से सब लोग मजबूत हो सकते है। भेद-भाव भी खत्म हो सकेंगे।

रामजनम, समाजवादी जन परिषद,
ग्राम भगवानपुर, वाराणसी

भारतीय समाज में जाति एक सच्चाई है इस सच्चाई पर परदा रहेगा तो ये जातिगत गैर-बराबरी खत्म नही हो सकती। मण्डल कमीशन लागू होने के समय आरक्षण नीति पर यह कहा जा रहा था कि जातिगत जनगणना 1931 में हुई थी और उस आधार पर आज की तारीख में नीति का निर्धारण नही किया जा सकता। आज यह अच्छा अवसर है। समाज को भली-भाँति समझने के लिए जातिगत जनगणना ज़रूरी है।

जातिगत जनगणना व आरक्षण नीति का बुनियादी सम्बन्ध है क्योंकि उसी आधार पर आरक्षण नीति बनाई जाती है। नीतियों के निर्धारण में भ्रष्टाचार इतना अधिक है कि सही लोगों तक उसका लाभ नहीं पहुँच रहा है, जिससे लगता है कि ये नीति गलत है। किन्तु प्रशासनिक व्यवस्थायें इतनी जर्जर हैं कि अर्थ का अनर्थ दिखने लगता है। चूँकि आरक्षण का मुख्य आधार सामाजिक है, इसलिए आरक्षण सुचारू रूप से चलाने के लिए जातियों की जनगणना जरूरी है। जातिगत जनगणना से कोई बड़ा परिवर्तन होगा ऐसा कुछ दिखाई नहीं दे रहा है। स्थापित राजनीति में जो लोग इस सवाल को मजबूती से उठा रहे हैं वे लोग वोट बैंक की दृष्टि से ही इस सवाल को देखते हैं, इसके अलावा उनकी कोई दृष्टि नही है। लेकिन हमारे जैसे कार्यकर्ताओं को एक परिवर्तन की गुन-गुनाहट का आभास है। शोषित, वंचित तबके को एक आशा की किरण अवश्य दिख रही होगी।

मुझे लगता है कि इस तरह की जनगणना से न तो जातिवाद बढ़ेगा और न ही छुआ-छूत बढ़ेगा साथ ही साथ इस जनगणना से दोनों चीजें कम भी नहीं होने वाली हैं। मनुष्य के द्वारा बनायी गयी ये दोनों चीजे एक क्रांतिकारी आंदोलन से ही प्रभावित या कम हो सकती हैं।

मनुष्य द्वारा निर्मित व निर्धारित यह जाति व जातिगत गैर-बराबरी बिना खत्म किये किसी सभ्य समाज की कल्पना नहीं की जा सकती लेकिन दुर्भाग्यवश इसको खत्म करने के जितने भी हथियार तैयार किये जाते हैं, उसका इस्तेमाल गलत तरीके से होता है। जिससे मनुष्य समाज की ये दोनो चीजें और मजबूत होती हैं जैसे- आरक्षण को डा0 लोहिया जाति खत्म करने के हथियार के रूप में देखते थे। किन्तु उनके चेलों ने वोट के चक्कर में आरक्षण को जातिवाद बढ़ाने का हथियार बना दिया तथा जातियों का संगठन बनाना शुरू कर दिया। उनका अलग सम्मेलन करना शुरू कर दिया। आधुनिक समाज बनने के बाद आज भी अस्पृश्यता समाज के अंदर मौजूद है। ऊपर से न दिखे, किन्तु लोगों के मन में आज भी बनी हुई है। यह ब्राह्मण और दलित के बीच में ही नही, तो यह यादव और दलित के बीच में या धोबी और दलित के बीच में भी झलकती है। चूँकि भारतीय समाज में जो सवर्ण अस्पृश्यता के प्रतीक हैं उनमें भी अभावग्रस्त या पिछड़े लोगों की एक बड़ी तादाद खड़ी हो रही है। उनके मन को बराबरी वाले समाज के तरफ ले जाने की जरूरत है, उनको पिछड़े और शोषित लोगों के साथ देखने की जरूरत है। यही समूह परिवर्तन या बुनियादी राजनीति का आधार बन सकता है।

बिजली से सम्बन्धित कुछ तथ्य

I. उत्पादन क्षमता:

(i) तापीय (थर्मल) ऊर्जा		
कोयले से	53.3%	
गैस से	10.5%	
तेल से	0.9%	
कुल		64.7%
(ii) जल (हाइड्रो) से		24.7%
(iii) न्यूक्लियर		2.9%
(iv) अक्षय (हवा से, माइक्रो हाइड्रो, सोलर आदि)		7.7%

II. उत्पादन में हिस्सेदारी:

(i) राज्य सरकारों का हिस्सा	52.5%
(ii) केन्द्र सरकार का हिस्सा	34.0%
(iii) निजी	13.5%

III. वितरण:

देश में ग्रामीण क्षेत्र के मात्र 44% घर विद्युतीकृत हैं। पूर्वी उत्तर भारत के राज्य यानि बिहार, बंगाल, उड़ीसा, झारखण्ड में यह प्रतिशत इससे बहुत कम है। उत्तर प्रदेश और राजस्थान में भी यह प्रतिशत इससे बहुत कम है। महाराष्ट्र, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, पंजाब, कर्नाटक, तमिलनाडु आदि प्रदेशों में यह प्रतिशत 70 से 80 के बीच में है।

पेज 1 का शेष...

बिजली ज्ञान पंचायत...

पंचायत को ज्ञान पंचायत का नाम इसलिए दिया गया है क्योंकि बिजली के बराबर बँटवारे के लिए लोकविद्याधर समाज के ज्ञान की भी उतनी ही ज़रूरत है जितनी बिजली विभाग और मंत्रालय के विशेषज्ञों की।

भारतीय किसान यूनियन के वाराणसी मण्डल के अध्यक्ष जगदीश सिंह यादव ने कहा कि बिजली की आवश्यकता अमीर व गरीब, गाँव और शहर दोनों को बराबर है, फिर एक को अधिक दूसरे को कम क्यों दी जा रही है? जितनी भी बिजली पैदा हो सबको बराबर-बराबर बाँट दी जाय। महानगरों को 24 घंटे व गाँवों को 2 घंटे यह अन्याय क्यों? बिजली पर बराबर हक की लड़ाई का आंदोलन छेड़ा जाएगा।

बुनकर वेलफेयर संघर्ष समिति के अध्यक्ष रहमतुल्ला अंसारी जी ने कहा कि अलग-अलग लड़ने से तो अच्छा है कि हम सभी मिलकर बिजली की लड़ाई लड़ें। जितना किसान परेशान है, उतना ही कारीगर भी। उन्होंने कहा कि हमें सरकार से कहना है कि बिजली हमारी जिंदगी है, हमें हमारी जिंदगी चाहिए।

जनजागृति कल्याण ट्रस्ट के अध्यक्ष मुन्नूलाल रावत जी ने कहा कि बिजली विभाग में इतना ज्यादा भ्रष्टाचार है कि उन्हें लोगों की सुविधा-असुविधा का कोई ख्याल नहीं है। वे अपनी जेबें भरने में लगे हुए हैं। बिजली की चोरी वे करते हैं और दोष आम नागरिक पर मढ़ते हैं। उन्होंने जोर देकर कहा कि किसान व कारीगरों की एक समन्वय समिति बननी चाहिए जो बिजली की लड़ाई को आगे बढ़ाये।

लोकविद्या पंचायत की सम्पादक डा0 चित्रा सहस्रबुद्धे ने कहा कि सरकारी संस्थानों, बड़े उद्योगों और बड़े बाजारों को बिजली अनवरत दी जा रही है और हमारे कारीगर व किसान बिजली के लिए तरस रहे हैं। इस ज्ञान पंचायत में यह घोषित करना होगा कि बिजली एक राष्ट्रीय संसाधन है और इसका बराबर का बँटवारा होना चाहिए। लोकविद्याधर समाज को सरकारी संस्थानों और बड़े उद्योगों से आधी कीमत पर बिजली मिलनी चाहिए। बिजली को लोकविद्याधर समाज के लिए आरक्षित करने की बात उठायी जानी चाहिए। लोकविद्याधर समाज बिजली के अभाव में अपने ज्ञान को खो बैठेगा। ऐसे में बिजली की आपूर्ति सुनिश्चित की जानी चाहिए।

भा0 कि0 यू0 के वाराणसी जिला अध्यक्ष लक्ष्मण प्रसाद ने कहा कि केवल सिंचाई या करघा चलाने के लिए ही बिजली की जरूरत नहीं है बल्कि हमें गाँव और बस्तियों की एक अच्छी तस्वीर बनानी है। गाँव और कारीगर बस्तियों को सही समय पर बिजली मिले तो गाँव के लोगों का महानगरों की ओर पलायन रूक जायेगा। ग्रामीण बच्चों को पढ़ाई के लिए, महिलाओं को घरेलू काम-काज के लिए और मनोरंजन के लिए बिजली की उतनी ही आवश्यकता है जितनी रोजी-रोटी कमाने के लिए। इसलिए बिजली पर सबका बराबर का हक है और सबको बराबर मिलनी चाहिए।

मिर्जापुर के भा0 कि0 यू0 जिला अध्यक्ष अली जमीर खाँ ने कहा कि बिना संगठन के कोई लड़ाई नहीं लड़ी जा सकती। इसलिए हमें यदि बिजली की लड़ाई लड़नी है तो अपना संगठन मजबूत करना चाहिए।

भा0 कि0 यू0 के जौनपुर के अध्यक्ष राजनाथ सिंह ने कहा कि बिजली हमारी आँखें हैं। बिजली न होने से हमारा जीवन अंधकारमय है, हमें न देश दिखाई देगा न समाज दिखाई देगा। बिजली एक अहम् मुद्दा है और इस पर बराबरी का हक हमारे आंदोलन का मुख्य मुद्दा है।

नारी हस्तकला उद्योग समिति की मंत्री प्रेमलता सिंह ने बिजली के बिना जीवन के असुरक्षित होने की बात को सामने रखा। बिजली के बिना रोजी-रोटी का संकट, बच्चों और परिवार की सुरक्षा का सवाल तथा भविष्य को संवारने के लिए आवश्यक शिक्षा-दीक्षा के सवाल को प्रमुख बताया। बिजली का गैर-बराबर बँटवारा समाज में गैर-बराबरी पैदा कर रहा है। उन्होंने कहा कि हमें एकजुट होकर बिजली के बराबर के बँटवारे की लड़ाई लड़नी होगी।

विद्या आश्रम के दिलीप कुमार 'दिली' ने कहा कि नदियों का पानी तो सबके लिए बराबर का था लेकिन बाँध बनाकर और फिर उससे बिजली बनाकर लोगों को उसका गैर-बराबर बँटवारा कर दिया। यह कहाँ तक जायज है? गाँव में बिजली नहीं मिलती जिससे गाँव के बच्चों की तरक्की रूक जाती है। गाँव वाले (किसान) खेत की सिंचाई के लिए बिजली की माँग करते हैं। किसान यह क्यों नहीं कहता कि बिजली का अभाव वहाँ के बच्चों की तरक्की पर रोक लगाता है। तब बिजली की लड़ाई को नया बल मिलेगा।

भदोही जिले के भा0 कि0 यू0 अध्यक्ष संजय शुक्ला, पटना के सामाजिक संस्था के सदस्य रामचन्द्र सिंह,वाराणसी जिले के भा0 कि0 यू0 के सदस्य विश्वनाथ यादव, मऊ के सच्चिदानन्द आदि सभी ने कहा कि बिजली राष्ट्रीय सम्पत्ति है और इस पर सभी का एक समान अधिकार होना चाहिए। संगठन में शक्ति है। यहाँ जो भी निर्णय होगा उससे सभी का हित होगा। हम बिजली समस्या को दूर करने के लिए आन्दोलन करेंगे।

निष्कर्ष

अन्त में पंचायत को सम्बोधित करते हुए उत्तर-प्रदेश भा0 कि0 यू0 के प्रमुख महासचिव राजेन्द्र शास्त्री ने कहा कि बिजली समस्या के लिए यह एक अच्छी शुरूआत है। लोगों ने तरह-तरह के विचार व सुझाव व्यक्त किये है। बिजली एक राष्ट्रीय संसाधन है और इस पर सभी नागरिकों का बराबर का हक है। इसका बराबर का बँटवारा होना ही चाहिए। पंचायत में व्यक्त विचारों और हुई बहस को ध्यान में रखते हुए उन्होंने एक किसान-कारीगर समन्वय समिति के गठन का ऐलान किया जिसे पंचायत ने सर्वसम्मति से पारित किया। शास्त्री जी के सुझाव के अनुरूप और सदस्यों की सहमति से निम्नलिखित समिति और उसकी अध्यक्षता तय की गई। यह भी तय किया गया कि समिति का जल्द ही विस्तार किया जाये।

किसान कारीगर समन्वय समिति

- सुनील सहस्रबुद्धे (अध्यक्ष)
- मुन्नूलाल रावत,अध्यक्ष जन-जागृति कल्याण ट्रस्ट (सदस्य)
- हाजी रहमतुल्ला अंसारी, अध्यक्ष बुनकर वेलफेयर संघर्ष समिति (सदस्य)
- डा0 चित्रा सहस्रबुद्धे, संपादक लोकविद्या पंचायत (सदस्य)
- लक्ष्मण प्रसाद, वाराणसी जिला अध्यक्ष भा0 कि0 यू0 (सदस्य)
- राजनाथ सिंह यादव, जौनपुर जिला अध्यक्ष भा0 कि0 यू0 (सदस्य)
- अली जमीर खां, मिर्जापुर जिला अध्यक्ष भा0 कि0 यू0 (सदस्य)
- संजय शुक्ला, भदोही जिला अध्यक्ष भा0 कि0 यू0 (सदस्य)
- गजानन्द सिंह, चन्दौली जिला अध्यक्ष भा0 कि0 यू0 (सदस्य)

पेज 1 का शेष...

बिहार में भा०कि०यू०...

एटा के मण्डल उपाध्यक्ष श्री मुन्ना सिंह ने देश की आजादी के क्रांतिकारी वीरों का संस्मरण सुनाने के बाद कहा कि सांसदों और विधायकों ने अपनी तनख्वाह और भत्ता बढ़वा लिया है। किसानों की दिन-प्रतिदिन दुर्दशा बढ़ती जा रही है। संगठन में आने के लिए उन्होंने युवाओं को प्रेरित किया।

एटा जिले के जिला उपाध्यक्ष श्री राधेश्याम ने कहा कि हमारा सौभाग्य है कि इतनी बड़ी तादाद में जगह-जगह से लोग आ गये हैं। पंजाब से महिलायें और बच्चे भी आये हुए हैं। निश्चित रूप से बिहार में भी सशक्त संगठन बनेगा।

फैजाबाद के मण्डल प्रभारी श्री देव नारायण सिंह ने बाबा टिकैत को त्याग, करूणा की मूर्ति बताते हुए कहा कि हमारा संगठन नहीं बढ़ेगा तो हम कुछ नहीं कर पायेंगे। सभी किसान एक हों।

पंजाब के जनरल सेक्रेटरी श्री गिल ने कहा कि यू0 पी0, बिहार के लोग भी पंजाब आयें। पंजाब के बारे में कहा जाता है कि आगे बढ़ा हुआ सूबा है। लेकिन पंजाब सबसे बड़ा कर्ज में डूबा प्रदेश है। सरकारें किसान विरोधी हैं।

पंजाब प्रदेश के अध्यक्ष ने कहा कि पटना हमारे गुरू गोविन्द सिंह जी की जन्मस्थली है। हमारे बिहार के भाई पंजाब में खेती मजदूरी करने जाते हैं। हमारा उनके साथ आत्मीय रिश्ता है। भाई-भाई का रिश्ता है। हम चाहते हैं कि बिहार में भी मजबूत संगठन बने। जिला बिजनौर उत्तर प्रदेश के श्री राम अवतार सिंह ने अपना विचार रखते हुए कहा कि बिजनौर की सीमा मुजफ्फर नगर से लगी है। वहाँ पर एक महान आत्मा (चौ0 महेन्द्र सिंह टिकैत) ने जन्म लिया है जिसने किसानों के लिए हर तरह की लड़ाई लड़ी। बिहार में पानी का कोई साधन नही है। बिहार में अभी भी बैल से खेती हो रही है। सिंचाई की कोई व्यवस्था न होने से पूरे इलाके की खेती प्रभावित हो रही है। बिजली नहीं तो बोरिंग कहाँ और बोरिंग नहीं तो पानी कहाँ। हरियाणा के पानीपत जिले के अध्यक्ष ने अपनी बात को रखते हुए कहा कि बिहार में भी पंजाब व हरियाणा की तरह मशीन लगवाने के लिए व टैक्टर खरीदने के लिए लोन मिले।

मध्य प्रदेश के प्रदेश अध्यक्ष श्री इन्द्रजीत पाठक ने कहा कि जब तक सभी किसान एकजुट नहीं होंगे तब तक कल्याण नहीं होगा। अतः सभी प्रान्तों में भा0 कि0 यू0 का मजबूत संगठन आवश्यक है।

बिहार प्रदेश के अध्यक्ष रामानुज प्रसाद सिंह ने कहा कि बिहार में किसानों की बहुत बुरी हालत है। बाबा टिकैत राजनीति की भाषा नहीं बोलते। अगर कुछ बोलते हैं तो किसान हित के लिए। ऐसे महात्मा के प्रति मैं नतमस्तक होता हूँ।

अन्त [redacted] क्षता कर रहे सरदार पूरन सिंह ने सबका आभ [redacted] तथा धन्यवाद ज्ञापन करते हुए पंचायत समा [redacted]

[redacted]ण प्रसाद मौर्य
वाराणसी जिला अध्यक्ष

जाति जनगणना के मायने

डा0 कृष्णराजुलु नायडू

जाति व्यवस्था को हमारे देश में अब लगभग 3500 वर्ष हो रहे हैं। कहाँ और कैसे इस व्यवस्था ने जड़ पकड़ ली यह तो नहीं मालूम लेकिन यह पहचान और सामाजिक संगठन की व्यवस्था एक सच्चाई है। जाति जन्म से ही मिलती है इसलिए जाति के तमाम रीति-रिवाजों के उल्लंघन के बाद भी शादी-ब्याह के समय आज भी जाति एक निर्णायक भूमिका निभाती है। जाति की व्यापक पहचान जाति के अंदर शादियों से ही ज़िन्दा है। सामाजिक सम्बन्धों में यानि रोटी-बेटी के व्यवहार में जाति एक पहचान को आकार देने की भूमिका में होती है। इसके अलावा शिक्षा, रोजगार और सामाजिक सेवाओं में आरक्षण का दावा करने में भी यह महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

1931 की जनगणना के बाद अभी तक की जनगणनाओं में जाति नही पूछी गयी। बार-बार यह माँग उठी कि जातिगत तथ्य एकत्रित किये जायें लेकिन इस माँग को बराबर खारिज किया गया। अब एक बार फिर यह माँग उठी है और सरकार के उच्च स्तर के नेतृत्व में भी इसके लिए समर्थन मिला है, तो हो सकता है कि इस बार की जनगणना (2011) में जाति को शामिल कर लिया जाय।

जाति जनगणना के खिलाफ जो तर्क हैं, उनमें कई तरह के विचार हैं। एक यह कि जाति जनगणना न करने से जाति को समाप्त करने वाले आंदोलनों को बढ़ावा मिलता है और दूसरा यह कि एकत्र किये गये जातीय आँकड़ों की प्रामाणिकता को जाँचने के तरीके का अभाव है। यह भय है कि कई लोग अपनी जाति गलत लिखवायेंगे या ऐसी जाति लिखवायेंगे जो अनुसूचित जाति, पिछड़ी जाति या जनजाति में हो ताकि शिक्षा, रोजगार आदि में जाति आधारित आरक्षण का फायदा उठा सकें। जाति को जनगणना में शामिल करने की वर्तमान माँग का आधार शायद इस जरूरत में है कि विभिन्न जातियों व जाति समूहों की संख्या की एक सही तस्वीर सामने आये ताकि जाति की वजह से वंचित समूहों के लाभ की नीतियों को सही परिप्रेक्ष्य मिले। साथ ही राजनैतिक दलों को अपने वोट बैंक को संजोने के रास्ते बनें। हालाँकि इनमें से कोई भी इस बात को नही कह रहा है कि जाति को जनगणना में शामिल करने या न करने से जाति मुक्त समाज को स्थापित करने में फायदा होगा या नुकसान।

जातीय आँकड़े

जाति की कोई निश्चित परिभाषा नही है और यह उम्र, लिंग, शिक्षा, व्यवसाय की तरह प्रमाणित की जा सकने वाली चीज़ नहीं है। यह कुछ हद तक एक आत्मनिष्ठ श्रेणी है जो सामुदायिक पहचान एवं दृष्टिकोणों से सम्बन्धित है।

आज व्यक्ति का जाति से जुड़ाव संदर्भों के अनुसार बदल सकता है। कोई एक नाम की जाति एक राज्य में उच्च जाति में होती है, दूसरे राज्य में वही जाति पिछड़ी जातियों में होती है तो तीसरे राज्य में सर्वाधिक पिछड़ी में। उदाहरण के लिए लम्बाडास जाति महाराष्ट्र में डीनोटिफाइड जनजाति में है जबकि आन्ध्रप्रदेश और कर्नाटक में अनुसूचित जनजाति में। इसलिए कोई भी व्यक्ति खुले तौर पर संदर्भ के अनुसार अपनी जाति को किसी श्रेणी में रख सकता है। ऐसे जातिगत तथ्यों को जनगणना से मान्यता मिलने पर विभिन्न जातियों की तुलनात्मक अवस्था के चलते आरक्षण के अन्दर विभिन्न हिस्सेदारियों पर सवाल उठना ही उठना है।

आन्ध्रप्रदेश में अनुसूचित जाति में वर्गीकरण की माँग है और राजस्थान में गुज्जर अनुसूचित जनजाति का दर्जा पाने की माँग कर रहे हैं, जिससे जाहिर तौर पर मीणा लोगों को नुकसान होना है।

जनगणना की प्रक्रिया में बिना इन सवालों की जाँच किये कुछ निर्धारित सवालों के जवाब ही दर्ज किये जायेंगे, इसलिए ये आँकड़े तथ्यगत गलतियों और इच्छानुसार गलतबयानी के शिकार हो सकते हैं। लेकिन यह प्रक्रिया किसी भी व्यक्ति को यह अनुमति देती है कि वह स्वतंत्र तौर पर यह तय कर सकता/सकती है कि उसे जाति के अन्तर्गत कैसे परिभाषित किया जाय। जो लोग खराब समझी जाने वाली जातिगत श्रेणियों के जाल में फँसे हैं उनके लिए ऐसी जनगणना के गम्भीर सामाजिक और भौतिक परिणाम हो सकते हैं। इसलिए लोगों को जाति 'चुनने' देने के वैयक्तिक और सामाजिक स्तर पर होने वाले परिणामों की हमें जाँच करनी चाहिए।

वास्तव में हममें से कोई भी अपनी जाति चुनने के लिए 'स्वतंत्र' नही है। लेकिन अब यह माँग है कि हमें यह आजादी होनी चाहिए कि हम अपने को किसी जाति के अंतर्गत रखें या न रखें और अगर रखना चाहें तो अपनी जाति चुनने के लिए आजाद हों। यह माँग 'आधुनिक लोकतांत्रिक' राजनीति के लिए बुनियादी है ऐसा दावा सामने आ रहा है।

जातिगत पहचान

डा0 राम मनोहर लोहिया ने कहा था ''जाति की व्यवस्था एक परिवर्तन विरोधी डरावनी यथास्थितिवादी ताकत है, एक ऐसी शक्ति जो सभी वर्तमान धूर्तता, असम्मान और झूठ को स्थायित्व देती है और असली भारत की पुनर्स्थापना जाति के खिलाफ विद्रोह मे पनपनी है।'' उन्होंने यह भी कहा कि ''अलग-अलग जातियों को बनाये रखकर बराबरी की बात करना अर्थहीन है। जातियों को खत्म करना ज़रूरी है। उनका नाम भी खत्म होना चाहिये।'' और यह कि ''भारत में अंग्रेजी राज ने जैसे धर्म का इस्तेमाल किया वैसे ही जाति का इस्तेमाल किया। जाति के खिलाफ विद्रोह में ही भारत का पुनरोदय बसता है और तभी भारत सच में और पूरे तौर पर जीवंत हो सकेगा।''

इस समझ का मतलब यह है कि शुरू में भारत में जाति और वर्ग एक ही थे। अंग्रेजी राज में औद्योगिक विकास के साथ नये मजदूर वर्ग का उदय हुआ और जाति निष्ठा की तुलना में वर्ग निष्ठा अधिक महत्वपूर्ण होने लगी। गैर-बराबरी का सवाल हल करने का तब यह अर्थ निकलने लगा कि आर्थिक शोषण के शिकार गरीब, भूमिहीन और बेरोजगार एक श्रेणी में आयें और उन्हें जातियों के अन्तर्गत न वर्गीकृत किया जाय। इस तर्क के अनुसार वर्गीय शोषण दूर करने की प्रक्रियायें आर्थिक सार रखती हैं, वे अधिकांश मातहत जातियों के पक्ष में ही जाती है क्योंकि ये ही जातियाँ अधिकतर आर्थिक शोषण का शिकार होती हैं।

लेकिन मजदूर वर्ग में भी जातिगत पहचान काफी मजबूत होती है (काम करने की हर जगह मजदूरों के जाति आधारित संगठन होते हैं)। अतः यह साफ है कि लोग केवल आधुनिक आर्थिक और सामाजिक पहचान से संतुष्ट नही होते और अपनी जातीय पहचान बनाये रखना चाहते हैं। हमें जाति की ताकत पहचानना चाहिये। जाति व्यवहार के नियमों को परिभाषित करती है और उन्हें लागू करती है (इसमें विवाह के नियम शामिल हैं जैसा कि खाप पंचायत में)। जाति से रोजगार की खोज में शहर आने वालों को एक आत्मविश्वास मिलता है। ऐसे नवागंतुक को जाति से सम्बन्धों का और जीवित रह पाने का एक ढाँचा मिलता है। इससे एकताओं को ताकत मिलती है। यह मनुष्य के स्वभाव के अनुसार है। जातीय चेतना के चलते यह साफ दिखता है कि आधुनिकता और धर्म निरपेक्षता मनुष्य की सक्रियता के सभी अंगों में व्याप्त नही है।

जाति बड़े पैमाने पर लोकविद्या का सामाजिक संगठनात्मक आधार है। और जनगणना में दोबारा इसकी गणना दिखलाता है कि यह हमारी सामूहिक चेतना का भाग है। अपनी जातिगत पहचान चुनने का लोगों को अवसर देकर हम उन्हें लोकविद्या के लिये स्थान देंगे। लोगों की जातीय पहचान के प्रति खुलापन रखकर हम लोकविद्या की भूमिका और स्थान समझ सकते हैं। हम यह समझ नही पाते हैं कि यह एक मूल्यवान सामाजिक पूँजी है जो व्यक्तियों और परिवारों को बृहत् समाज तथा विशेषकर राज्य से व्यवहार करने में 'ज्ञान का सहारा' देती है। यूरोपीय आदर्श एक ऐसे आणविक आदमी का है जो आधुनिक शिक्षा से लैस होकर समझौते (ठेके) पर आधारित व्यवस्था में राज्य के साथ एक सीधा सम्बन्ध रखता है। इसका नतीजा यह हुआ है कि पश्चिम में परिवार नष्ट हो गये हैं और समुदाय भुला दिये गये हैं। जितना ही जाति और लोकविद्या के बीच सम्बन्ध की समझ बढ़ेगी ज्ञान के प्रकारों और समाज संगठन के बीच रिश्ते की समझ बढ़ेगी। और उसी अनुपात में गैर-बराबरी के मूल को चुनौती देने तथा लोगों के लिये आत्मसम्मान और स्वाभिमान की जिन्दगी जीने के रास्ते खुलेंगे।

मौलिक स्तर पर लोकविद्या और जाति ने बिना आपसी झगड़े के विविधता को प्रोत्साहित किया। ऐसी विविध, स्वायत्त एवं प्रसारित व्यवस्थायें आज की एक-समान केन्द्रीकृत व्यवस्थाओं से अधिक स्थायी और अधिक दिनों तक चलने वाली रहीं ऐसा लगता है। वैश्वीकरण की व्यवस्थाओं में हर चीज को एक जैसा बनाने की प्रवृत्ति के खिलाफ जाति एक मजबूत किले के रूप में खड़ी होती है। हमें समझना चाहिए कि आधुनिकीकरण से जातियों के बीच आपसी वैमनस्य और झगड़ा बढ़ा है और इसने जातियों के बीच आपसी सहयोग जो सामाजिक और आर्थिक संगठन का आधार होता था उसका स्थान ले लिया है। (जातीय विभेद के सिद्धांत की गवाही इतिहास में नही मिलती। यह यदि इतना दमनकारी होता जैसा कि बताया जाता है तो पिछले हजार साल में नियमित तौर पर बड़े-बड़े जातीय युद्ध देखने को मिलते। ऐसा कुछ नही हुआ। हजारों साल चलने वाली इस व्यवस्था में अंदरूनी ताकत होनी चाहिए। जाने माने इतिहासकार धरमपाल ने दस्तावेजी अनुसंधान में यह दिखाया है कि सन् 1800 से 1830 के बीच मद्रास, पंजाब और बंगाल के राज्यों में स्कूलों में पढ़ने वालों में बहुमत पिछड़े वर्गों और अनुसूचित जातियों का था)।

जनगणना और जाति गणना

अतः यह जान पड़ता है कि सरकार की अथवा राजनैतिक पार्टियों की इच्छा चाहे जो भी हो जाति जनगणना से यह पता लगेगा कि लोग किन सामाजिक समुदायों के मार्फत अपनी पहचान चाहते हैं। किस हद तक उनके द्वारा अपनी सामाजिक पहचान चुनने की यह प्रक्रिया लोकविद्या से उनका लगाव व्यक्त करेगी यह कहना कठिन है। लेकिन मोटे तौर पर यह पता ज़रूर चलेगा कि अम्बेडकर, लोहिया, नेहरू, नम्बूदरीपाद जैसे नेताओं द्वारा आधुनिकतावाद और उद्योगवाद में सामाजिक मुक्ति का रास्ता देखने को लोग मान्यता देते हैं या खारिज कर देते हैं। ●

जाति और पहचान

जाति की पहचान का सवाल दोहरा है। एक यह कि किसी व्यक्ति की जाति की पहचान कैसे होती है और दूसरा यह कि किसी जाति समूह की पहचान कैसे बनती है। किसी भी व्यक्ति की जाति वही होती है जो उसके माँ-बाप की होती है। अगर माँ-बाप की जाति अलग हो तो निर्विवाद उत्तर मुश्किल हो जाता है तथापि सामाजिक परिवेश, परम्परा, कानून और आर्थिक दबदबा इत्यादि की भूमिकायें आकार लेती हैं। वैसे तो सिवाय किन्हीं सरकारी प्रक्रियाओं के या शादी-ब्याह के संदर्भ के किसी व्यक्ति की जाति निर्विवाद रूप से तय की जाय इसकी आवश्यकता बहुत कम होती है। अधिक महत्व का सवाल तो दूसरा सवाल है, समूह या समुदाय की जातिगत पहचान। इसमें दो किस्म के मोटे तर्क चलते हैं। एक सांस्कृतिक विरासत, सामाजिक मूल्य, जीवन शैली आदि का और दूसरा आर्थिक गतिविधि, दक्षता, हुनर, कला और ज्ञान का जिससे उस समूह के लोग अपना जीविकोपार्जन करते हैं। ये दो तर्क वास्तव में एक दूसरे से अलग नहीं है। अलग तो इन्हें आज की दुनिया ने कर दिया है जो आर्थिक पक्षों को जीवन के बाकी पक्षों से मुक्त करने की हिमायती है। अगर इन दोनों पक्षों को एकीकृत कर दिया जाय तो एक अद्भूत शक्ति का निर्माण होता है जिससे पूँजीवादी समाज डरता है। विरासत, सामाजिक मान्यतायें, दर्शन, आत्म छवि, सामाजिक संगठन का रूप, हुनर, तकनीक, कला, दक्षता सब मिलकर एक विद्यालोक का निर्माण करते हैं। जातीय संरचना के समाज का एक स्वायत्त विद्यालोक होता है। ऐसे अनेक विद्यालोक हैं। उसी तर्ज पर ग्राम विद्यालोक की भी कल्पना की जा सकती है। जो एक स्वायत्त विद्यालोक होगा।

जाति की चर्चा विद्या की चर्चा के बगैर अधूरी रहती है। जाति की पहचान भी विद्या की चर्चा के बगैर अधूरी रहती है। जातियों के संदर्भ में विद्याओं की चर्चा एक रचनात्मक संश्लेषणात्मक विद्या के दर्शन की ओर आकर्षित करती है। ऊपर बताये गये जाति की पहचान के दो पक्षों का एकीकृत दृष्टिकोण ही यह संश्लेषणात्मक दृष्टिकोण है। विद्या का पाश्चात्य दर्शन जो साइंस पर आधारित है विभाजन, विभेद और चीजों को अलग-थलग करके देखने पर आधारित है। जाति की चर्चा को ज्यादा पढ़े-लिखे लोग तब तक प्रतिगामी बताते रहेंगे जब तक हम उसे विद्या और समाज के युगांतरकारी दर्शन की चर्चा तक नही उठाते।

बहरहाल यह वही विवाद है जो आजादी के कुछ वर्ष पहले गाँधी और नेहरू के बीच खड़ा हुआ था। विवाद यह है कि समाज की पुनर्रचना किसानों और कारीगरों की पहल पर हो या पूँजीवादी हितों की प्राथमिकता में हो। विवाद यह है कि यह समाज गाँव और उसके पास के बाजार को केन्द्र में रखकर अपने भविष्य की कल्पना करे या महानगरों और मॉल में मनुष्य की गति देखे। अगर वैश्विक स्तर पर राष्ट्रों के बीच बराबरी का सिद्धांत और नीति अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था को जायज आधार देता है तो राष्ट्रीय व्यवस्थाओं में जातियों के बीच बराबरी के प्रति वैसी ही सोच क्यों न हो? सामाजिक जीवन का संचालन छोटे-छोटे समूहों के मार्फत ही हो सकता है। जो अनामदास आज दुनिया भर में घूमते नज़र आते हैं उनके सामाजिक अस्तित्व का आधार आज के पूँजीवाद की अकूत मुनाफे की व्यवस्था में है। एक समय जाति के प्रश्न पर साम्यवादियों और समाजवादियों ने जो सवाल उठाये थे वे उनसे पीछे हट चुके हैं। आज जाति पर प्रहार सिर्फ पूँजीवादी विचार से है। उन्हें जाति से शिकायत है क्योंकि श्रम का बाजार अबाध गति से चलता रहे इसमें उन्हें उससे बाधा पड़ती नज़र आती है। इसमें दो राय नहीं कि जातीय एकता के नाम पर अथवा बिना कुछ कहे-सुने उस एकता से शक्ति अर्जित कर तरह-तरह के गलत काम, समाज विरोधी काम और निहित स्वार्थों की सेवा के काम किये जाते रहे हैं। लेकिन इसके आधार पर निष्कर्ष क्या निकाला जाये यह सवाल महत्वपूर्ण है। अगर सार्वजनिक जीवन में नेता लोग अपने परिवार वालों को आगे बढ़ाते हैं तो इससे यह निष्कर्ष नही निकाला जा सकता कि इस स्थिति में सुधार तभी होगा जब परिवार ही नही होंगे।

परिवार, गाँव, जाति, वैचारिक सम्प्रदाय, धार्मिक सम्प्रदाय, नगर, राष्ट्र इत्यादि मानवीय समूहों के वे रूप हैं जिनमें संगठित होकर मनुष्य अपनी संवेदना, कला, आर्थिकी, विद्या, सामरिक सुरक्षा और रचनात्मक उत्सर्ग इत्यादि को आकार देता है। इनमें से जो भी पूँजीवादी विकास में बाधा बनता है उसके खिलाफ आंदोलन और अभियान संगठित करना पूँजीवाद की प्राथमिकताओं में होता है। आज फिर हम ऐसे दौर में हैं जब पढ़ने-लिखने वालों को व्यापक और मौलिक संदर्भों में सामाजिक व्याख्या को आकार देना होगा। कबीर, महात्मा फुले और महात्मा गांधी की स्वदेशी वैचारिक परम्परा को आगे बढ़ाना होगा।

● **सुनील सहस्त्रबुद्धे**

जाति और अस्पृश्यता

आजादी के 60 साल बाद भी अस्पृश्यता जिस स्तर पर बनी हुई है वह इस देश और समाज के लिये बेहद शर्मनाक है। ऐसा क्या कारण है कि हम इस गिरी हुई स्थिति से उबर नही पा रहे हैं।

जाहिर है आजादी के पहले जो स्थितियाँ थीं वे बदल गई हैं। गाँधी और अम्बेडकर के समय इसका जो रूप था वह बड़े पैमाने पर बदला हुआ नज़र आता है किन्तु दलितों के खिलाफ सामूहिक अत्याचार और परोक्ष रूप से दैनंदिन व्यवहार में उन्हें अलग-थलग रखने और अपने जैसा न मानने की बातें सभी जगह मौजूद नज़र आती हैं। ऐसी क्या बात है कि इस अभिशाप से हमें छुटकारा नही मिल रहा है। सरकारी और प्रशासनिक उदासीनता व राजनैतिक दलों में इच्छा शक्ति के अभाव के रूप में अपनी इस नाकामयाबी के कारणों की पहचान करना शायद मूल कारणों से कतराने के बराबर है। गहराई में देखें तो इसके दो कारण नजर आते हैं।

एक कारण यह मालूम पड़ता है कि हमने अस्पृश्यता की गाँठ जाति व्यवस्था के साथ बाँध दी। वास्तव में दोनों किस ढंग से जुड़े हैं या जुड़े हैं भी या नही, यह भारत के इतिहास का एक बहुत बड़ा प्रश्न है। किन्तु हमें यह समझा दिया गया कि अस्पृश्यता तभी खत्म हो सकती है जब जातियाँ ही खत्म कर दी जाएँ। और लगता है यही समझ अस्पृश्यता समाप्त न हो पाने का एक बड़ा कारण बन गई। अब अनुभव यह बताता है कि जातियों की व्यवस्था को ढहाना एक ऐसा युगांतरकारी कार्य है, जो सही हो या गलत, हम उसके पास तक फटक भी नही पाये है।

जबकि अनुभव यह भी बता रहा है कि अस्पृश्यता समाप्त करने का सवाल इतनी बड़ी सामाजिक क्रांति की माँग करे ऐसा नही है। इसलिए अस्पृश्यता खत्म करने को जातियों को ही खत्म करने के साथ जोड़कर जाने-अनजाने अस्पृश्यता समाप्त करने के कार्य को हमने एक न खुलने वाली गाँठ में बाँध दिया। आज लम्बे समय बाद यह गाँठ खोलने का एक मौका आया है। अस्पृश्यता को जाति के सवाल से मत बाँधिये और हल दिखाई देने लगेगा।

दूसरा कारण हमारी आधुनिकता की सीमाओं में है। जिस अंग्रेजी व यूरोपीय आधुनिकता को हमने अंगीकार किया है, जिसकी शिक्षा प्रणाली तथा औद्योगिक एवं सम्पत्ति की व्यवस्थाओं के जरिये हम अपने समाज को पुनर्संगठित कर रहे हैं, उसमें यह ताकत ही नही है कि वह अस्पृश्यता दूर कर सके। यह वही आधुनिकता है जिसका अपरिहार्य आधार गुलाम-व्यापार एवं उपनिवेशीकरण में रहा है। यह आधुनिक व्यवस्था तभी बनी जब भारत में यहीं के लोग दो नम्बर के नागरिक हो गये और प्रशासनिक पदों के लायक नहीं समझे गये। लोकतंत्र के इंग्लैण्ड के सर्वोच्च सिद्धांतकारों ने यह सिद्धांत प्रतिपादित किया कि भारत के लोग स्वशासन की योग्यता नही रखते। यही उन्होंने और उपनिवेशों के बारे में भी कहा। दुनिया के अश्वेत समुदायों के प्रति उनकी दृष्टि के बारे में कौन नहीं जानता! अश्वेत उनके लिए केवल अछूत ही नहीं थे बल्कि वे उन्हें मनुष्य का दर्जा देने को ही तैयार नहीं थें। दक्षिण अफ्रीका की आजादी विभिन्न राष्ट्रों के आजाद होने की श्रृंखला में लगभग आखिरी है। आज भी अश्वेतों के साथ सम्बन्ध की मानसिकता बहुत बदली नही है। 21वीं सदी का अमेरिका का राष्ट्रपति यदि एक अश्वेत के साथ हाथ मिलाने के बाद हाथ धोता है या पोंछता है ऐसी ख़बर अखबारों में छपे तो इसका अर्थ क्या है? हमारी आधुनिकता पश्चिम की नकल है और अस्पृश्यता हमने वहाँ से भी विरासत में पाई है। अगर अस्पृश्यता के खिलाफ हमारी जंग वास्तविक होनी है तो एक समानांतर आधुनिकता का निर्माण करना होगा।

ज्ञान का समाजशास्त्र हमें यह बताता है कि जो विचार अथवा वर्ग किसी समय आपस में एक दूसरे के सहयोगी होते हैं, वे कुछ पीढ़ियों बाद एक-दूसरे के विरोध में हो जा सकते है। और जो, एक-दूसरे के विरोध में कभी होते है, 50-60 वर्षों में एक-दूसरे के सहयोगी हो जा सकते हैं। समाज की प्रक्रियायें ऐसे अंतरसंश्लेषण के मार्गों से गुजरती रहती है। सुविख्यात इतिहासकार डी0 डी0 कोसाम्बी भारत के इतिहास की एक विशेषता यह बताते हैं कि यहाँ प्रगति का मार्ग सामाजिक अंतरसंश्लेषण की प्रक्रियाओं के मार्फत प्रशस्त होता रहा है। गांधी और अम्बेडकर के वैचारिक संश्लेषण की हैसियत अगर हम रखते हैं तो अस्पृश्यता समाप्त करने के समयबद्ध कार्यक्रम पर अमल करने की क्षमता भी हम दिखा सकेंगे।

● **सुनील सहस्त्रबुद्धे**

सम्पादकीय

नौजवानों से

इस वक्त चारों तरफ नौजवानों की होड़ नज़र आ रही है। प्रतिस्पर्धात्मक परीक्षाओं में भाग लेने वाले बड़े-बड़े हुजूमों में शहरों के रास्तों पर नजर आते हैं। सरकारी व अर्ध सरकारी नौकरियों में प्रवेश की परीक्षाओं का आयोजन बड़े पैमाने पर होता रहता है। रेलवे, स्वास्थ्य, राजस्व, पुलिस, सुरक्षा तंत्र, वन, शिक्षा, बैंक आदि जैसे अनेक विभागों में सबसे निचले पायदान पर जगह बनाने के प्रयास में लाखों-करोड़ों नौजवान लड़के और लड़कियाँ यहाँ से वहाँ दौड़ लगाते नज़र आते हैं। फीस, नकल, रिश्वत व पैरवी का इंतजाम इस महासंग्राम का हिस्सा है।

अब लगभग 20 वर्षों में सरकार की शिक्षा व रोजगार नीति ने यह स्थिति पैदा कर दी है, जिसमें नौजवान कुछ सोच न पायें बस भीड़ के साथ दौड़ते रहें। ये लगभग सभी नौजवान उन घरों से आते हैं जिनके पास पूँजी नही होती। ये किसानों के, कारीगरों के, और छोटी-छोटी सरकारी व गैर-सरकारी नौकरी करने वालों के घर हैं। इनके पास अपना भविष्य बनाने के लिये इन्हीं इम्तिहानों के जरिये रास्ता खोजने के अलावा कोई चारा नही है, ऐसा सामान्य तौर पर सुनने को मिलता है। क्या यह सही है? या एक ऐसी हवा बना दी गई है जिसके चलते शिक्षा और परीक्षा के महकमें पूँजी बटोरने के बड़े स्थान बन गये हैं और साथ ही नौजवानों में सोचने के रास्ते बंद करके पूँजीवाद की आबोहवा शांत बनी रहे इसके इंतजाम किये गये हैं।

जो रास्ता 100 में 10 को भी आगे नही बढ़ने देता वह रास्ता कैसा? यह तो बृहत् समाज को नये सिरे से दबाने का इंतजाम है। इस बात का इंतजाम है कि कम से कम मूल्य में अधिक से अधिक श्रम उपलब्ध होता रहे। नौजवानों को इस तिलिस्म की काट निकालनी ही होगी। इस काट में सबसे पहली बात यह है कि केवल अपने बारे में न सोचकर अपने समाज के बारे में सोचा जाए इस विचार में आकर्षण पैदा करना होगा। यह समझना होगा कि दुनिया और देश बहुत बड़े पैमाने पर दो समाजों में बँटे हुये हैं। एक तरफ पूँजी है और दूसरी तरफ गरीबी, एक तरफ आधुनिक शिक्षा और उसके तमाम तरह के पुछिल्ले हैं और दूसरी तरफ लोकविद्या और इसके जानकार हैं। यानि एक तरफ पूँजीपति, व्यापारी और बड़ी-बड़ी नौकरियाँ करने वाले लोग हैं और दूसरी तरफ, किसान, कारीगर, छोटे-छोटे दुकानदार और आदिवासी हैं, जो अपने ही देश में बहिष्कृत-सी अवस्था में रहते हैं। जब तक यह महाशोषणकारी विभाजन नही समाप्त होता तब तक बहिष्कृत समाज के नौजवानों के लिये कोई भविष्य नही है। हर गाँव और हर बस्ती से 2-4 नौजवान विभाजन रेखा पार करते रहेंगे और शेष उन्हें देख-देखकर ऐसे सपने बुनते रहेंगे जो कभी पूरे नही होने हैं।

इसके अलावा कोई चारा नही है कि व्यक्तिगत सोच के ऊपर उठा जाय और हर नौजवान अपने को उस समाज के अंग के रूप में देखे जिसका वह हिस्सा है। उस समाज के जो भी संगठन हैं उनमें शामिल हो। नौजवानों से सक्रिय पहल की उम्मीद की जाती है। अगर उनके सामाजिक संगठन किन्हीं संकीर्ण ढर्रों में फँस गये हैं तो उन्हें उबारकर सही रास्तों पर लाने के प्रयास करें। उदाहरण के लिये ग्रामीण नौजवानों को बड़े पैमाने पर भारतीय किसान यूनियन में शामिल होना चाहिये और वहाँ से ज्ञान और शिक्षा पर वह बहस खड़ी करनी चाहिये जो आज चल रही परीक्षाओं और प्रतिस्पर्धा की पागल दौड़ को चुनौती दे सके। क्या कारीगर परिवारों के नौजवान भी अपने समाजों के संगठनों के मार्फत ऐसी ही आवाज नही उठा सकते? ध्यान रहे नौजवानों को उनके समाजों से अलग करना यह पूँजीवाद का एक बहुत बड़ा तिलिस्मी षड़यंत्र है।

इसे पीछे जाना तो नहीं कहा जा सकता!

नीचे कुछ ऐसे बिन्दु दिये जा रहे हैं जो जनगणना में जाति के समावेश के प्रस्ताव के चलते खड़ी हुई बहस में सामने आ रहे हैं। यह सूची यह दिखाती है कि यह कितना बड़ा सवाल है और शायद यह भी कि बुनियादी बदलाव की राजनीति नये सिरे से पुनर्परिभाषित होने के लिये तैयार है।

1. भारतीय समाज की एक बहुत बड़ी वास्तविकता जो पर्दे के पीछे काम करती है, सामने आयेगी।
2. सार्वजनिक बहस में जाति शामिल होगी, जिससे दबी हुई और तिरस्कृत जातियों के सम्मान के रास्ते खुलेंगे।
3. अपनी जाति चुनना यह आधुनिक समाज के एक मौलिक वैयक्तिक अधिकार के रूप में सामने आयेगा।
4. जाति की व्यवस्था का यानि विभिन्न जातियों के अनुपात आदि का चित्रण तो होगा ही किंतु साथ में इन अनुपातों को किसी दिशा में बदलने के प्रयास भी होंगे।
5. जाति पर आधारित राजनीति का संकीर्ण माना जाना बंद होगा।
6. राजनीति और समाज की व्यवस्थाओं में विभाजित मानदण्डों का दोहरापन समाप्त होगा और एक नई ऊर्जा प्रस्फुटित हो सकती है। नये किस्म की सांगठनिक प्रक्रियायें अस्तित्व में आ सकती हैं, जो राजनीति में नये अर्थ डालें।
7. जाति व्यवस्था के जो सिद्धांत विश्वविद्यालयीय विद्या ने बनाये हैं, वे बिखरना शुरू होंगे।
8. विभिन्न सामाजिक परिवेशों में संकटों और समस्याओं को सुलझाने के लिये लोकविद्या विचार का स्वागत होगा।
9. भारत का जनमानस औपनिवेशीकरण द्वारा आरोपित झूठी अस्मिता से बाहर निकलेगा।
10. विभिन्न जातियों के बीच आपसी बराबरी के विचार और व्यवहार को बढ़ावा मिलेगा।
11. अस्पृश्यता और जाति व्यवस्था के बीच की गाँठ खोलने के अवसर तैयार होंगे। सामाजिक दर्शन और समाज शास्त्र के सिद्धांत इस धरती में और यहाँ की विरासत में अपने आधार ढूढेंगे।
12. ज्ञान के एक नये लोकस्थ दर्शन के निर्माण की बाधायें दूर होना शुरू होंगी।
13. ज्ञान के इस युग में हम पश्चिम के पिछलग्गू बनने की जगह अपनी एक स्वतंत्र भूमिका तय कर सकेंगे।
14. ज्ञानी होने के ठप्पे के लिये विदेशों की ओर देखने की प्रवृत्ति टूटेगी और शिक्षा की व्यवस्थाओं में एक अभूतपूर्व परिवर्तन का दौर शुरू हो सकेगा।
15. पिछड़े वर्गों का वर्तमान नेतृत्व शायद नही जानता कि उन्होंने इतना बड़ा खेल खेल दिया है जो उनकी खुद की संकीर्ण राजनीति को ध्वस्त कर सकता है।
16. यह वह उबाल साबित होगा जिस पर कोई ढक्कन न टिक सके।

सामाजिक कार्यकर्ता सजग और तैयार रहें और इस बहस और क्रिया में शुरू से शामिल हों। जनता का हित तभी सध सकता है जब उसका दर्द और उसकी विद्या दोनों ही इस प्रक्रिया में सक्रिय भूमिका निभायें।

आखिर हमारे देश के पढ़े-लिखे लोग क्या चाहते हैं ?

प्रतिस्पर्धात्मक परीक्षाओं के नतीजों से अखबार भरे पड़े हैं। इंजीनियरिंग और मेडिकल के लिए अंधी दौड़ है। 18 से 22 साल के बच्चों को नशा करा दिया गया है। सफल तो कुछ ही होते हैं और बाकि सब हताश और हीन भावना का शिकार होते हैं। इस नशे का दोष किसी राजनैतिक, आर्थिक नेतृत्व पर मढ़ने से काम नहीं चलेगा। जब भी किसी बड़ी समस्या या कष्ट का दोष हम किसी दूरस्थ सत्ता पर डाल देते हैं तो एक सुकून पैदा होता है, अपनी जिम्मेदारी से बचने का सुकून, एक झूठा सुकून। यह सुकून बहुत डरावना है। हमें अलगर्जियों का देश बनाता है। पढ़े-लिखे लोग इस अवस्था के लिए जिम्मेदार हैं। वे ही उस राजनैतिक और आर्थिक नेतृत्व को व्यापक बौद्धिक जनाधार देते हैं जिसके बल पर यह सब धड़ल्ले से हो रहा है।

पढ़े-लिखों में इस बात की समझ न हो ऐसा नहीं है। असंख्य लोग ऐसे मिलेंगे जिन्हें इस स्थिति का दर्द भी है और समझ भी। लेकिन उनकी संस्थाओं में न यह समझ दिखाई देती है और न यह दर्द ही। स्कूलों, कॉलेजों, विश्वविद्यालयों, शोध-संस्थानों, शिक्षा मंत्रालयों कहीं भी कोई बहस नही दिखाई देती। इंजीनियरिंग, मेडिकल, विधि (ला), प्रबन्ध (मैनेजमेंट), इत्यादि के लिए प्रतिस्पर्धा के सवाल पर सभी संस्थान एकमत हैं। अगर हमें यह दिखाई देता है कि यह दौड़ देश की प्रगति के नाम पर केवल कम्पनियों और निगमों को ही बढ़ावा देगी तो हम संस्थागत स्तर पर इसका विरोध क्यों नहीं करते? ऐसा नही है कि पढ़े-लिखे लोगों ने पहले कोई करतब किया हो और वे अब इससे चूक रहे हैं। पहले भी उन्होंने कोई हिम्मत शायद ही दिखाई हो। वे हमेशा ही यथास्थितिवाद के साथ खड़े नज़र आते हैं।

गाँधी जी से शुरू कीजिए। राष्ट्रीय आंदोलन की दो पीढ़ियों को नेतृत्व देने वाले इस महानायक को पढ़े-लिखे लोगों का बहुत सीमित समर्थन मिला। अधिकांश पढ़ा-लिखा वर्ग उनके विचारों से इत्तफाक नहीं रखता था। आजादी के 25 साल बाद तक विश्वविद्यालयीय शिक्षा में गाँधी विचार को स्थान दिया जाय इस पर विचार तक नहीं किया गया। डा0 लोहिया से यह वर्ग नाराज़ रहता था। उनके अंग्रेजी हटाओ आंदोलन को इन्होंने छात्रों को गुमराह करने वाला माना। चरण सिंह से सहानुभूति रखने वाले पढ़े-लिखे लोग बहुत खोजने के बाद ही मिलते थे। सरकारी नौकरी करने वाले, कालेजों और विश्वविद्यालयों में पढ़ाने वाले, बड़े उद्योगों में काम करने वाले, वकील, डाक्टर कोई भी उस शख्स से सहानुभूति नहीं रखते थे जिसने आजाद हिन्दुस्तान में सबसे बड़े पैमाने पर किसानों के पक्ष में एक मजबूत तर्क सार्वजनिक पटल पर रखा। बाद में तमिलनाडू, कर्नाटक, महाराष्ट्र, हरियाणा, पंजाब और उत्तर प्रदेश में उठे महान किसान आंदोलन का विरोध भी समूचे पढ़े-लिखे वर्ग ने किया। चौ0 महेन्द्र सिंह टिकैत को एक अनपढ़ जाट किसान नेता से ज्यादा का दरजा ये न दे सके। विश्वनाथ प्रताप सिंह के मंत्रिमण्डल द्वारा मण्डल आयोग की सिफारिश के खिलाफ पढ़े-लिखे लोगों ने रास्ते पर लड़ाईयाँ लड़ीं। और अब यह जाति जनगणना का सवाल सामने आया है।

पढ़े-लिखे वर्गों को पूँजीपतियों का साथ देना बन्द करना होगा। अमेरिका और यूरोप की तरह इस देश को बनाने का रास्ता-बस्तियों, खेतों और जंगलों को खून से रंगने का रास्ता है, यह समझना होगा। इस देश का भविष्य, यहाँ के गरीब किसानों और कारीगरों का भविष्य, उनके नौजवान बेटे और बेटियों का भविष्य इस पर बहुत निर्भर करता है कि पढ़े-लिखे लोग कैसे सोचते हैं? और क्या चाहते हैं? इतिहास की सीख यही है कि पढ़े-लिखे वर्गों को अपनी सोच और चाहत बदलने की जरूरत है। चाहे कितनी भी देर हो चुकी हो इसकी शुरूआत नेक ही होगी।

बेमिसाल दुकानदार

खुदरा व्यवसाय दुनिया के सबसे बड़े उद्योगों में से एक है और इस पर मुट्ठी भर बड़ी कम्पनियों का कब्जा है। ये कम्पनियाँ मुख्य रूप से अमेरिका और पश्चिमी यूरोप की कम्पनियाँ हैं। वॉल मार्ट, कार्रेफोर और मेट्रो जैसी विशाल बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ अपने घरेलू बाजारों पर पूरा कब्जा कर चुकी हैं। अब वे भारतीय बाजार पर नजरें गड़ाए हुए हैं। हाल के समय में रिलायंस, टाटा और बिरला जैसे बहुत सारे भारतीय व्यावसायिक घरानों ने भी खुदरा व्यापार में पैर फैलाने का ऐलान किया है।

भारत में लगभग 1.2 करोड़ दुकानें हैं। इस आधार पर भारत को दुनिया में सबसे ज्यादा दुकानों वाला देश कहा जा सकता है। हमारे देश में होने वाली कुल खुदरा बिक्री में से लगभग 97 प्रतिशत असंगठित खुदरा क्षेत्र के हिस्से में आती है। औद्योगिक खुदरा कम्पनियाँ संगठित खुदरा व्यापार के हिस्से को अगले चार साल के भीतर 3 प्रतिशत से बढ़ाकर 15-20 प्रतिशत तक पहुँचा देना चाहती हैं। इसके लिए ये कम्पनियाँ 1000 अरब रूपये से भी ज्यादा का निवेश करेंगी। इस निवेश में से 60-65 प्रतिशत हिस्सा खुदरा खाद्य एवं किराना क्षेत्र में आपूर्ति श्रृंखला तैयार करने पर निवेश किया जाएगा। विश्लेषकों का कहना है कि ''जो काम दूसरे वैश्विक बाजारों में 25-30 साल में हुआ, भारत उसे 10 साल में करना चाहता है।''

इस बारे में अभी लोगों को बहुत जानकारी नहीं है कि मौजूदा खुदरा और कृषि क्षेत्र पर औद्योगिक नियंत्रण से क्या असर पड़ेंगे। ये दोनों क्षेत्र फिलहाल रोजगार के सबसे बड़े स्रोत हैं।

भारतीय व्यापार बेहद संगठित है और सदियों से कम लागत और बेहतर कार्यकुशलता के आधार पर चलता रहा है। आज हमें अपने व्यापारियों, दुकानदारों, फेरी वालों और रेहड़ी वालों की काबिलियत की जरूरत है जिससे न केवल करोड़ों लोगों को रोजगार मिल सके बल्कि समाज की बुनियादी जरूरतों को पूरा करने के लिए सामुदायिक सेवायें भी उपलब्ध होती रहें।

हमारे खुदरा लोकतंत्र की कुछ खासियतें

1. खुदरा क्षेत्र में रोजगारों की भारी संख्या। इस क्षेत्र में लगभग 4 करोड़ लोगों को रोजगार मिलता है जो कुल रोजगारों का 8 प्रतिशत और हमारी जनसंख्या का 4 प्रतिशत है।
2. आत्मसंगठन का उच्च स्तर।
3. कम पूँजी लागत।
4. भारी विकेन्द्रीकरण।

दुनिया भर में दुकानों की संख्या और घनत्व के लिहाज से भारत सबसे आगे है। हमारे देश में प्रत्येक हजार लोगों पर 11 दुकानें चलती हैं। अन्तर्राष्ट्रीय औसत से मिलान किया जाए तो यह संख्या बहुत ऊँची है लेकिन भारतीय बाजार में मौजूद विकेन्द्रीकरण की वजह से ये सारे व्यवसाय आसानी से चलते रहते हैं और दुनिया के भावी बाजारों के लिए एक मॉडल बन सकते हैं। भारत के खाद्य बाजार में विशाल और औद्योगिक खुदरा कम्पनियों के आने से यहाँ के 65 करोड़ किसानों और खुदरा व्यापार में लगे 4 करोड़ की जिन्दगी पर सीधा असर पड़ेगा। अगर हम दूसरे देशों का उदाहरण लें तो साफ देख सकते हैं कि कहीं भी इन कम्पनियों ने आम लोगों, समाज और पर्यावरण के बारे में नहीं सोचा। हमारे खाद्य बाजार में भी इन कम्पनियों के चलते से विनाशकारी परिणाम पैदा होंगें। अब समय आ गया है कि हम एकजुट होकर भारतीय खुदरा बाजार पर कब्जे की इन कोशिशों के खिलाफ आंदोलनों का सूत्रपात करें।

(प्रत्यक्ष विदेशी निवेश जाँच संगठन, भारत । इण्डिया एफडी आई वॉच।)

लोकविद्या पंचायत के पाठकों से

1. **हर 50 रूपये पर 12 अंक दिये जायेंगे।**
2. **पंजीकरण की अर्जी दे दी गयी है। प्रक्रिया पूरी होने पर हर माह अंक निकाला जायेगा।**
3. **पंजीकरण तक हर दो माह में एक अंक सीमित प्रसार के लिए निकाला जा रहा है।**
4. **अपने विचार अवश्य भेजें।**
5. **अपने क्षेत्र के लोकविद्याधरों की समस्यायें, संघर्ष एवं संगठनों के बारे में अवश्य लिख भेजें।**

सम्पर्क फोन : 9452824380

जिसकी विद्या उसकी शक्ति

निम्नलिखित वार्ता विद्या आश्रम द्वारा प्रकाशित पुस्तिका लोकविद्या से ली गई है। –सम्पादक

प्रश्न- गरीब समाज के पास ऐसा क्या है जिसमें आपको शक्ति दिखाई देती है?

उत्तर- क्षेत्रीय विभिन्नताओं के बावजूद गरीब समाज में जो लोग हैं उनमें बड़ा हिस्सा किसान, कारीगर, आदिवासी और छोटे दुकानदारों का है। इन सभी लोगों के पास आधुनिक शिक्षा की शक्ति नहीं है, धन की शक्ति नहीं है, बड़े ओहदों पर रहने से प्राप्त शक्ति भी नहीं है। इनकी शक्ति इनकी अपनी विद्या में बसती है। इन्हें अशिक्षित या अज्ञानी कहना बड़ी भूल है। इनका ज्ञान लोकविद्या कहलाता है। लोकविद्या का भण्डार किसी भी अन्य ज्ञान से बहुत बड़ा है। ये लोकविद्याधर हैं। इस लोकविद्या के बल पर न केवल ये अपनी गरीबी का जुँआ उतार फेंक सकेंगे, बल्कि पूरे समाज को अधिक बराबरी का और न्यायपूर्ण बना सकेंगे और प्रकृति की लय के साथ जीने की व्यवस्थाओं से लैस भी कर सकेंगे।

प्रश्न- मुझे तो यह अतिरंजना लगती है। ऐसा तो अभी किसी विचार में सुनने या पढ़ने में नहीं आया है, न यूरोप के विचारकों में और न अमेरिका के।

उत्तर- हाँ, शायद ऐसा हो सकता है, क्योंकि हम विचार के लिए हमेशा ही यूरोप या अमेरिका की ओर ताकने के आदि हो चुके हैं। लेकिन अगर आपने पूरब के विचारकों के बारे में सुना-पढ़ा होगा तो आप जानकारी रखते होंगे कि उन्होंने हर युग में 'अपनी' शक्ति को पहचानने पर जोर दिया है। हर युग में इस शक्ति की पहचान नये ढंग से की गई है और इसके बल पर लोकहितकारी परिवर्तन लाये गये हैं। आज भी इसे आजमाया जा सकेगा। आज यह शक्ति लोकविद्या में है।

प्रश्न- मुझे यह अब रहस्यमय लग रहा है। मैं अधिक उत्सुक होता जा रहा हूँ। पहले तो आप ये बतायें कि लोकविद्या क्या है और इसमें आप इतनी ताकत क्यों और कैसे देखते हैं?

उत्तर- ठीक है। मैं कोशिश करता हूँ। लोकविद्या को हम यूँ समझ सकते हैं कि यह वो ज्ञान है जो समाज में बसा है। लोकविद्या किसी धर्म, जाति, सम्प्रदाय, विश्वविद्यालय या पुस्तक में बाँधी नहीं जा सकती। यह लोगों के जीवन में बसती है। वहीं पैदा होती है और नित-नवीन होती रहती है। लोकविद्या समाज में रहती है, यह सबकी है, यह किसी एक की या कुछ लोगों की नहीं हो सकती। यह मनुष्य और मनुष्य समाज के साथ पैदा हुई है। और इस धरती पर जब तक मनुष्य की हस्ती है तब तक उसके जीवन का सहारा बनी रहेगी।

प्रश्न- कुछ साफ नहीं हुआ इसे जरा विस्तार से बतायें।

उत्तर- इसे शायद मैं इस तरह रखूँ कि स्कूल-कालेज-विश्वविद्यालय के बाहर जो ज्ञान है वह लोकविद्या है। यानि समाज के बहुसंख्यक लोग जिस ज्ञान के बल पर खुद जिन्दा रहते हैं और समाज को भी जिन्दा रखते हैं, वह ज्ञान लोकविद्या है। जैसे-किसान सब्जी, अनाज पैदा करता है। वह ये सब अपनी विद्या के बल पर पैदा कर रहा है। इस विद्या को उसने स्कूल-कालेज में नही पढ़ा, बल्कि अपने समाज के बुजुर्गों से सीखा है। अपनी ज़रूरत और अनुभव से इसमें सुधार और इसे नया बनाना उसे आता है। अगर किसी बाहरी ज्ञान से कोई नई बात वह सीखता है, तो उसे वह अपने ज्ञान में शामिल करना भी जानता है। उसी तरह कारीगर समाज है। लोहा, लकड़ी, मिट्टी, पत्थर, काँच, प्लास्टिक, कपास, कागज, धातु आदि से जीवन के लिए आवश्यक चीजों का उत्पादन करने वाले तरह-तरह के कारीगर लोकविद्या के ही धनी हैं। इन्हीं की तरह आदिवासी समाज और महिलायें भी लोकविद्या की धनी हैं। ये सब अपनी विद्या स्कूल-कालेज के बाहर समाज से प्राप्त करते हैं। किसान, कारीगर, आदिवासी और महिलाओं के पास लोकविद्या का असीमित भण्डार है। यह उनकी शक्ति है।

प्रश्न- ठीक है। मैं यह समझ सकता हूँ कि जो व्यक्ति पढ़ा-लिखा नहीं है, उसके पास ज्ञान नही है यह कहना गलत होगा। हाँ, यह कहें कि उनके पास स्कूलों में सिखाया जाने वाला ज्ञान नहीं है, किसी दूसरे प्रकार का ज्ञान है। लेकिन सवाल यह है कि उनके पास का ज्ञान यानि लोकविद्या तो पिछड़ी हुई है। उस ज्ञान के बल पर उनकी और समाज की उन्नति कैसे सम्भव है?

उत्तर- उन्नति, विकास और प्रगति बिना गरीब समाज का संदर्भ लिए तय नहीं की जा सकती। गरीब समाज यानि किसान, कारीगर, आदिवासी, छोटी-छोटी दुकानदारी करने वाले लोगों की खुशहाली, सक्रियता, पहल, दखल और नियंत्रण को बढ़ाने वाली व्यवस्था का निर्माण तो उनकी अपनी विद्या के बूते ही सम्भव है। विद्या किसी और की और शक्ति हमारी हो, यह नहीं हो सकता। जिसकी विद्या उसकी शक्ति बनेगी। आजादी के बाद से विद्या तो पश्चिमी समाज (सभ्यता) की अपनाई गयी और हम सपने यह देखने लगे कि उनकी विद्या के बल पर हमारी शक्ति बढ़ेगी, हमारी खुशहाली होगी। उनकी विद्या का इस्तेमाल उन्हीं की सेवा में जाना था, सो गया। पिछड़ी और अगड़ी विद्या से आपका क्या मतलब है? मेरे विचार से तो जो विद्या बहुसंख्य समाज के लिए सम्मानपूर्ण रोजगार का सृजन करती हो, जिसमें प्रकृति की लय के साथ जीने का मूल्य निहित हो, जिसमें पूँजी और सत्ता के दबाव को नकारने का आत्मबल हो, वही विद्या अगड़ी मानी जानी चाहिए। जिस विद्या के बल पर उत्पादन तो बहुत होता हो, लेकिन उत्पादन करने वाले गरीबी में ढकेले जा रहे हों, ऐशो-आराम के इंतजाम को बनाने में प्राकृतिक संसाधनों को मनमाने ढंग से लूटने की छूट हो, हर क्षेत्र में ऊँच-नीच को बढ़ाती हो, वह विद्या पिछड़ी मानी जानी चाहिए।

प्रश्न- आपके अनुसार लोकविद्या अगड़ी विद्या है।

उत्तर- निःसंदेह लोकविद्या अगड़ी विद्या है। और अगड़ी विद्या इसलिए नहीं है कि इसमें बड़े-बड़े चमत्कार करने की ताकत है, बल्कि इसलिए कि इसमें सारे मनुष्य समाज को सम्मान से जीने के उद्यम देने की क्षमता है। यह मनुष्य का साथ नहीं छोड़ती। निरंकुश और अत्याचारी सत्तायें इसे मिटाने की कोशिश करती रही हैं, लेकिन यह न मरती है, न मिटाई जा पाती है।

प्रश्न- यह कैसे?

उत्तर- हमारे अपने देश में देखिये। अंग्रेजों ने लोकविद्या को खत्म करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। किसानों का जमकर शोषण किया, कारीगरों के उद्योगों को तबाह कर दिया, आदिवासियों को जंगलों से खदेड़ना शुरू किया, लेकिन इन विपरीत परिस्थितियों में भी इन्हें सहारा लोकविद्या का ही रहा। लोकविद्या के बल पर न केवल ये जिन्दा रहे बल्कि समाज के लिए भोजन, कपड़ा आदि का इंतजाम भी करते रहे। आजादी के बाद भी इनकी इस भूमिका को कोई सम्मान मिला हो, ऐसी बात नहीं है। विश्वविद्यालय से पढ़े-लिखे लोगों ने लोकविद्या का तिरस्कार ही किया। सरकारों ने इनके उद्यमों को सहारा न देकर उल्टे उजाड़ने का काम ही जारी रखा और पूँजीपतियों के उद्योगों को तरह-तरह की सुविधायें और प्रोत्साहन दिया। इसके बावजूद लोकविद्या मरी नहीं। आज भी इसके द्वारा पैदा किया गया उत्पादन व सेवाएँ आधुनिक विद्या के बल पर पैदा किये गये उत्पादन/सेवाओं से कम नहीं है। यह लोकविद्या की शक्ति नहीं तो और क्या है?

प्रश्न- मुझे आपसे वार्त्ता करने में बहुत-सी वे बातें अर्थपूर्ण नजर आने लगी हैं जिन्हें मैं देखकर अनदेखा करता रहा हूँ। सच तो ये है कि इन साधारण-सी बातों को भी देख न पाने का मुझे अफसोस हो रहा है। आपके साथ इस वार्त्ता को जारी रखना चाहता हूँ।

उत्तर- जरूर।

●

कारीगर समाज के संगठन का समय आ गया

जातीय जनगणना के संदर्भ में शुरू हुई बहस से एक सीख यह ली जा सकती है कि अब कारीगरों के संगठित होने का मौका आ गया है। वैश्ववीकरण ने संगठित औद्यौगिक क्षेत्र को विघटित करके छोटे-छोटे उद्योगों के आधुनिकीकरण का रास्ता खोल दिया है। जिसके चलते भी वह परिस्थिति पैदा हो रही है जो कारीगरों के संगठन को बनाने की माँग करती है और उसके मौके तैयार करती है। एक ऐसी ही प्रक्रिया 40 साल पहले किसानों के साथ हुई थी। कृषि के आधुनिकीकरण और पिछड़े वर्गों के उभार की प्रक्रियायें एक साथ चली थीं जिसके नतीजे स्वरूप किसान अभूतपूर्व पैमाने पर संगठित हुये और तमिलनाडू से लेकर पंजाब तक विशाल संगठन बनते चले गये। कुछ वैसी ही बात कारीगरों के साथ भी हो इसका अब समय आ गया जान पड़ता है। कारीगर समाज कुछ ज्यादा ही जातियों को अपने में समाता है। अगर बिना सोचे-समझे भी इन जातियों की एक सूची बनाई जाय तो काफी लम्बी हो जायेगी। बुनकर, बढ़ई, लोहार, सोनार, कुम्हार, दलित, दर्जी, नाई, धोबी, भूजा, हलवाई, मल्लाह, सोनकर, चौहान, राजभर, गोंड़, जुलाहा, फारूखी, मंसूर, मुसहर और न जाने कितने। और फिर वे असंख्य कार्य हैं जिनके करने वाले अधिकांश इन्हीं जातियों से आते हैं। जैसे स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता, साइकिल और मोटरसाइकिल, (वाहन) मरम्मतकर्ता, बिजली मिस्त्री, राजगीर, प्लास्टिक के कारीगर, टी. वी., मोबाइल और कम्प्यूटर बनाने वाले इत्यादि। विभिन्न जातियों के बीच बराबरी का सिद्धांत कारीगर समाज के संगठन का बुनियादी सिद्धांत है।

किसान संगठनों की खासियत यह रही है कि जिन क्षेत्रों में जो बहुमत जातियाँ थीं उन्होंने आगे बढ़कर सभी किसानों को संगठित करने का काम हाथ में लिया। जैसे पश्चिमी उत्तर प्रदेश में जाट, पूर्वी उत्तर प्रदेश में कहीं यादव, कहीं राजपूत तो कहीं पटेल, महाराष्ट्र में मराठा, तमिलनाडू में तेवर और पंजाब में सिख जाट। किसानों के बीच की बढ़ी हुई जातियों ने किसानों के बीच जातिगत अंतर्विरोधों को अनदेखा करने और बराबरी को मान्यता देने का विचार स्थापित किया। कारीगर जातियों के सामने यह एक बहुत बड़ी नज़ीर है। सभी जातियों के सामाजिक संगठन हैं और अधिकांश उत्पाद करने वालों ने अपने-अपने कार्यक्षेत्र के अंतर्गत आर्थिक संगठन भी बनाये हैं। यह विभाजन प्रतिगामी साबित हो रहा है। अब एक संगठन की दरकार है। सभी वर्तमान संगठनों को आपस में मिलकर एक संघीय सांगठनिक ढाँचे का निर्माण करना चाहिये, जिसमें शामिल सभी छोटे-बड़े संगठन और जातियाँ आपस में बराबरी के सिद्धांत और व्यवहार का पालन करें। अगर केवल आरक्षण के सवाल पर ध्यान केन्द्रित किया जाय तो यह संगठन नहीं बन सकता। आरक्षण का लाभ तो मिलना ही चाहिए किन्तु वह कारीगरों के व्यापक संगठनों के निर्माण के आधार के रूप में नाकाफी है। आरक्षण सरकारी व्यवस्थाओं में स्थान से सम्बन्ध रखता है।

अगर पूरे कारीगर समाज को गरीबी और गैर-बराबरी की घेरेबन्दी तोड़नी है तो सामाजिक और आर्थिक दुनिया में प्रतिष्ठा और बराबरी के मुद्दों पर जोर देना होगा। इसके लिये एक बुनियादी दावा जरूरी है। और वह है ज्ञानी होने का दावा। हर कारीगर, और ऐसे करोड़ों कारीगर हैं, वह चाहे जिस जाति, धर्म या पेशे का हो, एक बड़ा जानकार होता है। कच्चा माल, तकनीक अपने स्तर की वित्तीय व्यवस्थायें, स्थानीय बाजार, कला, डिजाइन आदि सबका वह जानकार होता है। अलग-अलग कारीगर अलग-अलग जानकारी रखते हैं लेकिन उस जानकारी, कौशल या ज्ञान को प्राप्त करने, संजोने और आगे बढ़ाने के उनके तरीके एक से होते हैं। जब सभी कारीगर जातियों के लोग मिलकर यह दावा करेंगे कि इस देश के उद्योग तो वास्तव में वही चलाते हैं और व्यापारी, मैनेजर और पूँजीपति तो केवल लाभ के लिये उस पर काबिज हैं, और समाज की न्यायसंगत व्यवस्थायें वही हो सकती हैं जिनमें उनके ज्ञान को बाकी ज्ञान के बराबर दर्जा मिले यानि कारीगर समाज को बराबर का आर्थिक और सामाजिक दर्जा मिले।

● **सुनील सहस्त्रबुद्धे**

लोककथा

टेंगरा का पैंतरा

सरिता गोंड़ द्वारा कही गई और आरती, गीता, व शिखा द्वारा लिखी गयी।

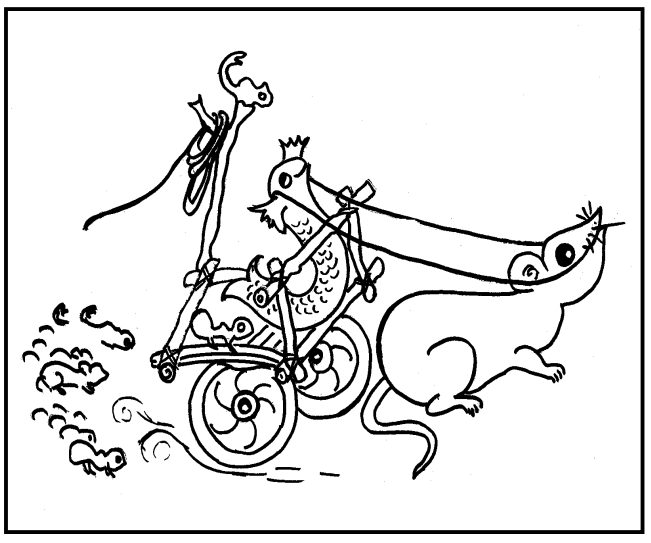

एक रहल किसान। उ रोज खेत पर काम करे जात रहल। खेती करके उ आपन परिवार चलावत रहल। परिवार के नाम पर उ अउर ओकर मेहरारू बस दू जने रहलन। उनके एक्को लड़की-लड़का ना रहलन। एक दिन किसान क मेहरारू किसान से कहलेस कि ''आज हमार मछरी खाये क मन करत हौ।'' किसान कहलेस कि ''मन तो हमरो बड़ा दिन से करत बा। दा झोला दा, अउर पईसा, हम आज ले ही आईं।'' किसान बजार गयल, उहाँ एक दुकान से मोल-भाव करके मछरी खरीदलेस अउर घर आके अपने मेहरारू से कहलेस कि ''ला, तू एके धोवा बनावा। अब हम जात हईं खेते।'' किसान खेते चल गयल।

ओकर मेहरारू मछरी बनाके खाना क पोटली बना के माथे पर हाथ रखके कहलिन ''अगर हमरो एको बाल बच्चा रहतन त कम से कम अपने बाप के खाना त लेके जइतन'' इतने में गगरी के पाछे से आवाज आयल ''माई-माई दा खनवा, हम लेके जाईं''। किसान क मेहरारू एहर-ओहर देखनी, कोई न दिखायल। फिर कुछ देर बाद आवाज आयल ''माई-माई दा खनवा हम ले जाईं।'' किसान क मेहरारू कहलेस ''के हौ, तू सामने आवा''। गगरी के पाछे से एक टेंगरा छटकत-छटकत सामने आयल। किसान क मेहरारू कहलेस ''तू के हऊआ?'' त टेंगरा कहत हौ कि जवन बाऊ मछरिया लियाल रहलन ओही में हम रहली, अऊर छटक के गगरिया के पाछे लुका गयल रहली। किसान क मेहरारू कहलेस ''अच्छा तू हऊवा। बाकि तू खनवा कईसे लेके जईबा? तू इतना छोट क हऊआ, त खाना कईसे लेके जईबा?'' टेंगरा कहलेस ''माई तू चिन्ता मत करा, बस हई पोटलिया हमरे कटवा में फंसा दा, हम ले जाईब।''

किसान क मेहरारू पोटली के टेंगरा के कटवा में फंसा देहनी। टेंगरा छटकत-छटकत चल देहलेस। खेत पर पहुँचके डाड़े पर खड़ा होके चिल्लायें लगल ''बाऊ-बाऊ खाना लियायल हई, खा ला।'' किसान एहर-ओहर देखके सोचलेस कि हमरे त एक्को लड़की-लड़का ना हऊवन। कोई दूसरे के बोलावत होई। तनि देर बाद टेंगरा फिर चिल्लायल ''बाऊ-बाऊ खाना लियायल हई, खा ला'' किसान हल छोड़ के डाड़े पर आयल। टेंगरा के देख के किसान कहलस ''तू के हऊआ?'' टेंगरा कहलेस ''बाऊ तू जवन मछरिया लियायल रहला ओही में हम रहली। अब ई ला, तू खाना खा ला, तब ले हलवा हम

... शेष पेज 8 पर

गरीबी बनाम गैर-बराबरी

डा० अमित बसोले

वैश्वीकरण और नयी आर्थिक नीति के चलते देश में गरीबी बढ़ी है या घटी है इस पर अर्थशास्त्री लगातार बहस करते दिखाई पड़ते हैं। गरीबी घटी है सिद्ध करने के लिये यह आँकड़ा दिखाया जाता है कि 1993-94 में देश की 30% आबादी गरीबी रेखा के नीचे थी। जबकि 2004-05 तक यह संख्या घट कर लगभग 21% हो चुकी थी। लेकिन यह ''गरीबी रेखा'' (रूपये 11 प्रति दिन प्रति व्यक्ति खर्च कर पाना) इतनी बेमतलब है कि सरकार के ही एक आयोग (अर्जुन सेनगुप्ता आयोग) ने हाल ही में जारी की गयी रिपोर्ट में इस बात पर जोर दिया है कि अगर इस रेखा को हम 20 रूपये प्रति दिन प्रति व्यक्ति तक ले आयें तो देश की 77% आबादी गरीब कहलाएगी। साथ ही साथ इस रिपोर्ट ने यह भी स्पष्ट किया की महज 7% लोग सरकारी अथवा निजी नौकरियों में महीने के अनुसार नियमित वेतन पाते हैं। बाकी 93% असंगठित क्षेत्र में हैं और उनकी आय या रोजगार की कोई गारंटी नहीं होती है। इस 93% में शामिल हैं सारे किसान, कारीगर, छोटे दुकानदार, महिलाएँ, यानि वे तमाम लोकविद्याधर जो अपने ज्ञान और हुनर के बल पर जीविका चलाते हैं और इस पूरे समाज की नींव डालते हैं। सेनगुप्ता कमीशन का यह ऐलान की देश मे 77% लोग मात्र 20 रूपये या उससे कम में जीविका चलाते हैं, आर्थिक विकास दर के दीवाने शासन-प्रशासन में किसी को रास नहीं आया है और इस भयकंर सच्चाई को लेकर कदम उठाना तो दूर, अप्रैल 2009 में पूरी की गयी इस रिपोर्ट को औपचारिक तौर पर प्रधान मंत्री के दफ्तर में स्वीकार तक नहीं किया गया।

सेनगुप्ता रिपोर्ट ''इण्डिया शाइनिंग'' की सच्चाई क्या है इस बात को तो उजागर करता है, लेकिन वैश्वीकरण के युग की सबसे बड़ी ''उपलब्धि'' तेज गति से बढ़ती आर्थिक विषमता को नहीं छूता। देश में गरीबी की तो लगातार वार्ता होती रहती है। लेकिन इस वार्ता का फायदा गरीबों को नहीं बल्कि अमीर तबके को होता है। क्योंकि जितनी ज्यादा बात गरीबी की होगी उतना ही गैरबराबरी से ध्यान हटाया जा सकता है। वार्ता में यह बात लाना जरूरी है कि जहाँ एक ओर तीन चौथाई आबादी अत्यंत गरीब है, वहीं भारत ''डालर अरबपतियों'' (जिनकी संपत्ति सौ करोड़ डालर है) की गिनती में दुनिया में 5 नंबर पर पहुँच गया है। महज दो सालों (2007-2009) में डालर अरबपतियों की संख्या 25 से बढ़कर 50 हो गयी है। ब्रिटेन और कनाडा जैसे विकसित देशों को भी हमने इस मामले में पीछे छोड़ दिया है। गरीबी बढ़ी हो चाहे घटी हो, इसमें कोई दो राय नहीं है कि नयी आर्थिक नीति के चलते गैरबराबरी हद से ज्यादा बढ़ चुकी है। और यह न सिर्फ भारत में बल्कि दुनिया में कई छोटे-बड़े देशों में हुआ है। जितनी आर्थिक विषमता अमेरिका में 1930 में थी, आज फिर उतनी ही है। जो थोड़े बहुत फायदे इस दौरान अमेरिका की आम जनता को हुए थे, वे उदारीकरण और बाजारीकरण के जरिये वापस ले लिए गये हैं।

वैश्वीकरण जहाँ जाता है, अपने साथ आर्थिक विषमता लाता है। 1990-91 के बाद भारत में भी गैरबराबरी बढ़ती जा रही है। उदाहरण के तौर पर अस्सी के दशक में सबसे अमीर 1% लोगों के पास देश की 5% संपत्ति थी। सन् 2000 के आते-आते यह बढ़ कर 10% बन चुकी थी। आज भारत के सबसे अमीर 10% लोगों के हाथों में उतनी संपत्ति है जितनी बाकी के सारे (90%) लोगों की कुल मिलाकर है। यानि चंद शहरों में रहने वाले सरकारी या निजी नौकरियाँ करने वाले कर्मचारी अथवा कारोबार करने वाले पूँजीपति एक तरफ, और देश की सारी जनता दूसरी तरफ। गाँव की हालत अलग से देखी जाय तो वह और भी बुरी है। वैश्वीकरण के चलते शहर के मध्यम और उच्च वर्गियों को जो फायदा हुआ है वह तो इस बात में साफ दिखाई देता है कि वे अब पहले से 40% ज्यादा खर्च करने की क्षमता रखते हैं और इस नए खर्चीलेपन का कुछ लाभ शहरों के गरीबों को मिल भी सकता है। लेकिन गाँव की 80% आबादी (यानि देश के बहुसंख्य) लोग पहले से कम खर्च कर पा रहे है। यानि वस्तुनिष्ठ और तुलनात्मक दोनों दृष्टि से गाँव और भी अधिक गरीब हुआ है।

अगर उपरोक्त आँकड़े कुछ अजनबी से दिखाई पड़ते हैं तो उन आँकड़ों की तरफ देखें, जिनसे हम सब भली-भाँति परिचित हैं। अंसगठित क्षेत्र में काम करने वाले तमाम कारीगर मुश्किल से 100-200 रूपये रोज कमा पाते हैं। महिला कारीगरों को 100 रूपये रोज भी नसीब नही है और 50-60 रूपये रोज में गुजारा करना पड़ता है। दूसरी ओर निचले तबके के सरकारी कर्मचारी भी 400-500 रूपये रोज (10 से 15 हजार रूपया महीना) कमा लेते हैं। अगर हम किसी से पूछें कि ऐसा क्यों है तो यह जवाब अक्सर मिलेगा कि ऐसा इसलिए है कि किसान और कारीगर पढ़े-लिखे नहीं होते हैं। जब यह बात कही जाती है तो इसका मतलब यह होता है कि किसान और कारीगर विद्या या नारी विद्या समाज में तिरस्कृत है, इनकी विद्या को विद्या नहीं समझा जाता, वरना क्या हमारे किसान और कारीगर स्कूल-कालेज में पढ़े-लिखे लोगों से कम हुनर और जानकारी रखते हैं? उनके श्रम और ज्ञान की कीमत इतनी कम क्यूँ कर दी गयी है कि एक कुशल बुनकर को बिनकारी के मुकाबले मनरेगा में मिट्टी फेंकने से ज्यादा कमाई होती है? और इसे अर्थशास्त्री और आर्थिक नीतियाँ बनाने वाले एक प्रगतिशील कदम भी मानते हैं।

यह बात अब बिलकुल साफ हो चुकी है कि उदारीकरण किसानों, कारीगरों, छोटे दुकानदारों, महिलाओं, यानि सारे लोकविद्याधर समाज को नए सिरे से उजाड़ने का कार्यक्रम है। बड़े शहरों में रहनेवाली देश की 10% आबादी की चकाचौन्ध लगातार मीडिया में दिखाने से यह बात कितने समय तक छुपी रह सकती है कि 90% लोगों की जिन्दगी बढ़ती गैरबराबरी की वजह से और भी बदतर होती जा रही है? गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले लोगों की घटती संख्या दिखा कर हमें फुसलाया नहीं जा सकता। अगर इस देश में सभी बराबर के नागरिक हैं तो सारे राष्ट्रीय संसाधनों जैसे- शिक्षा, स्वास्थ्य, बिजली, वित्त, बाजार आदि में सब का बराबर का अधिकार है। जिसको दो वक्त का खाना भी नहीं मिलता उसे दो वक्त का खाना दे दिया जाये तो हम गरीबी हटाने का दावा कर सकते हैं। लेकिन हम इंसानों की बात कर रहे हैं, जानवरों की नहीं। और इंसान को सिर्फ खाने की नहीं बल्कि, शिक्षा, स्वास्थ्य, मनोरंजन, काम, बाजार सभी की जरूरत है। अगर हम केवल गरीबी की बात करते रहेंगे तो कभी यह सवाल नहीं उठा पायेंगे कि जो जरूरतें बड़े शहरों के वासियों की हैं क्या वही जरूरतें गाँववासियों की नहीं हैं? शाम के वक्त पढ़ाई, मनोरंजन आदि के लिए बिजली की जितनी जरूरत एक शहरी को है क्या उतनी ही एक गाँववासी को नहीं हैं? गैरबराबरी का सवाल केवल आय या संपत्ति के बँटवारे तक ही सीमित नहीं है। बल्कि इसके कई ऐसे आयाम हैं जिनपर चर्चा नहीं के बराबर होती है। इस लेख की अगली कड़ियों में इन आयामों को हम उजागर करने का प्रयास करेंगे।

●

नई प्रौद्योगिकी की कीमत और बौद्धिक सत्याग्रह की जरूरत

अमेरिका और यूरोप में सूचना प्रौद्योगिकी, जैव प्रौद्योगिकी, नैनो प्रौद्योगिकी और काग्निटिव साइंस (समझ का विज्ञान), इन चार वैज्ञानिक विषयों को इस सदी के पहले दशक में अब बन रही दुनिया की अग्रिम पंक्ति की विद्या के रूप में पहचाना गया है। बहस तेज है और दिशाबोध का दर्शन तैयार करने वाले नेतृत्व ने इन प्रौद्योगिकियों पर मूलभूत कथन तैयार किये हैं। ये कथन, जो नीचे दिये जा रहे हैं, अप्रैल 2007 की इग्लैंड से संगठित एक इन्टरनेट पर हुई कान्फ्रेंस में प्रस्तुत किये गये थे। इन कथनों में से कुछ आपको बड़े भयानक मालूम पड़ सकते हैं, जैसे कि सातवाँ कथन। तथापि इन्हें जान लेना जरूरी है। विद्या के रूप में प्रस्तुत घोर अविद्या के रूपों को पहचानना भी लोकविद्या समाज बनाने की प्राथमिक आवश्यकताओं में है। बौद्धिक सत्याग्रह की आवश्यकता क्यों है इसे भी जान लेना जरूरी है।

एक दूसरे से जुड़ी उपरोक्त नई प्रौद्योगिकियों की सिफारिश के आठ प्रारम्भिक कथन

1. **आर्थिक असरः** मनुष्यों की कार्यक्षमता में थोड़े सुधार के बल पर सम्पत्ति के निर्माण की वैश्विक क्षमता में एक उछाल लाया जा सकता है इसलिये लगभग एक पीढ़ी में ही ये नई प्रौद्योगिकियाँ अपने पर होने वाले खर्च से ज्यादा वापस कर देंगी। इसमें बीमारी की वजह से खोये जा रहे काम के दिनों का घटना और पूरी क्षमता के साथ काम करने के लिये 1-2 साल और मिलना सम्मिलित है।
2. **नियमन की सीमायेंः** नई प्रौद्योगिकी के संदर्भ में राष्ट्रीय सरकारों और अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं की भूमिका अनुसंधान के 'नियमन' की होनी चाहिये, न कि उनके काम का स्वरूप तय करने की अथवा उनके लिये जरूरी संसाधनों पर अपनी दादागिरी कायम करने की। अनुसंधान की दिशा व गति तय करने का काम इन प्रौद्योगिकियों के विशेषज्ञों पर छोड़ दिया जाना चाहिये।
3. **जलेबी और डंकः** नई प्रौद्योगिकियों के नियमन के अंतर्गत इससे होने वाले नुकसान की संभावनाओं और अन्याय को पहचानना होगा और साथ में प्रासंगिक अविष्कार एवं नवीनीकरण को प्रोत्साहित करने के लिये कानूनी सुरक्षा एवं कर-राहत को आकार देना होगा। चूँकि इन अविष्कारों में यह ताकत हो सकती है कि वे मानवता के अर्थ को ही मौलिक स्तर पर पुनर्परिभाषित कर दे, इसलिये नियमन की नीतियाँ जलेबी और डंक की व्यवस्था करें।
4. **ऐतिहासिक दृष्टांतः** आने वाले दिनों में नैनो प्रौद्योगिकी क्या कर सकती है इसे सूचना प्रौद्योगिकी की तुलना में देखा जाये, जिसने एक पीढ़ी में ज्ञान और सम्पत्ति निर्माण की हर प्रक्रिया में कम्प्यूटर को लाकर बैठा दिया। अगर अनुमान के हिसाब से विकास हुआ तो सन् 2050 में नैनो-प्रौद्योगिकी की वही भूमिका होगी जो सन् 2000 में सूचना प्रौद्योगिकी की थी।
5. **कल्याण का भविष्यः** नई प्रौद्योगिकी के भयानक नतीजों की बात करने वाले यह भूल जाते हैं कि 'आवश्यकता आविष्कार की जननी है।' वे नही देख पाते कि इसके चलते राष्ट्रीय सुरक्षा और चिकित्सा, आपस में एक होकर एक नये 'कल्याण विज्ञान' का सूत्रपात कर सकते हैं।
6. **क्रमिक विकास पर प्रभावः** जैसे-जैसे मनुष्य की क्षमताओं और कार्यों की अभिवृद्धि रोजमर्रे के जीवन में समेकित होती जायेंगी, वैसे-वैसे मनुष्य के भौतिक क्रमिक विकास के इतिहास का महत्व कम होता जायेगा। जब एक पूरी पीढ़ी कृत्रिम व संश्लेषित रासायनिक अंगों, सिलिकान चिप प्रत्यारोपण और नैनो स्वास्थ्य रक्षा के दौर से गुजर चुकी होगी तब हमारा कन्दमूल खाने वाले और शिकारी पूर्वजों के साथ अनुवांशिक सम्बन्ध अजीब मालूम पड़ेगा, प्रतिक्रियावादी भी मालूम पड़ सकता है, जैसी कि 'परम्परा' के प्रति सम्मानजनक बहुत-सी वार्ताएँ अभी मालूम पड़ती हैं। डार्विन भी अंततः अपने 19 वीं सदी के साथियों मार्क्स और फ्रायड के रास्ते चला जायेगा।
7. **मूल्य-मान्यताओं में परिवर्तनः** नई प्रौद्योगिकी के बड़े-बड़े नकारात्मक परिणाम हो सकते हैं। किंतु वे तब तक चिंता के विषय नही होने चाहिये जब तक मानव जाति के पूरे सफाये का ही सवाल न उठ खड़ा हो। जब तक ये नकारात्मक नतीजे निकलेंगे तब तक समाज की मूल्य-मान्यतायें उनसे समझौता कर चुकी होंगी। तब वे नये विकास से होने वाले फायदों के वाजिब दाम (कीमत) के रूप में दिखाई देने लगेंगे। देखिये, सौ साल पहले भावी सर्वनाश के लिये आगाह करने वाले सही साबित हुये जब उन्होंने कहा कि मोटरों और हवाई जहाजों की बढ़ती संख्या से पर्यावरण प्रदूषित होगा, लेकिन क्या हमें उस वक्त उनकी बात मान लेनी चाहिये थी?
8. **सक्रियता का सिद्धांतः** नई प्रौद्यौगिकी के कुछ समर्थकों का कहना है कि आजकल अनुसंधान और विकास के नियमन में काफी इस्तेमाल किये जा रहे सावधानी बरतने के विचार के स्थान पर सक्रियता के सिद्धांत का अनुसरण होना चाहिये। सावधानी को सक्रिय पहल से यदि पूरी तरह स्थानापन्न न भी किया जाय तो भी उससे पैदा होने वाले कष्टों को तो कम किया ही जाना चाहिये। इस सक्रियता के सिद्धांत से होने वाला फायदा कुल मिलाकर नुकसानों और प्रतिकूल नतीजों से आधिक होना चाहिये। इस सिद्धांत से बनने वाली नीतियों में नई प्रौद्योगिकी लागू करने में **सीमित जिम्मेदारी कानून** शामिल है, और यह भी शामिल है कि लोग खुद को नये किस्म के उपचार के लिये उपलब्ध करें इसकी शर्तों को उदार बनाया जाये।

ये कथन ज्ञान के क्षेत्र में बढ़ती पूँजी प्रधानता और आक्रामकता के सबसे हालिया उदाहरण हैं। आततायी ज्ञान-विज्ञान का मुकाबला बौद्धिक सत्याग्रह ही कर सकता है इस दिशा में सोचने के लिए कुछ विचार नीचे दिये जा रहे हैं।

बौद्धिक सत्याग्रह

ज्ञान मनुष्य का स्वाभाविक गुण है। ज्ञान से ही मानवीय गुणों की प्रतिष्ठा होती है और ज्ञान से ही समाज चलता है। लेकिन यदि ज्ञान पर निहित स्वार्थों का कब्जा हो जाय और यदि ज्ञान प्रबन्धकों के हाथ की कठपुतली बन जाय तो उसके शोषण के रास्ते खुलते हैं, सामाजिक मूल्यों में गिरावट आती है, बृहत समाज में विपन्नता आती है और समाज दो हिस्सों में बँट जाता है। एक ओर ज्ञान पर कब्ज़े की पूँजी की दुनिया होती है तो दूसरी ओर लगभग सब लोग। ज्ञान की मुक्ति ही मनुष्य की मुक्ति का रास्ता है। 21 वीं सदी को यह ऐतिहासिक चुनौती उठानी है। इसकी शुरूआत बौद्धिक सत्याग्रह से की जानी चाहिए।

बौद्धिक सत्याग्रह ज्ञान के सम्बन्ध में एक व्यापक दृष्टिकोण अपनाने और उसे व्यवहार में लाने का तरीका है। नीचे दिये गये बिन्दु व्यक्तिगत स्तर पर और सामाजिक स्तर पर इसे समझने और इसे अभ्यास में लाने में सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

1. ज्ञान के क्षेत्र में श्रेणीबद्धता यानि ऊँच-नीच को अस्वीकार करना।
2. ज्ञान के किसी एक प्रकार को सबसे बढ़िया न मानना।
3. ज्ञान के किसी एक स्थान को सबसे अधिक महत्व न देना।
4. ज्ञान के निर्माण के किसी एक तरीके को सबसे सही न मानना।
5. ज्ञान के निजीकरण का विरोध करना।
6. ज्ञान के संगठन के विविध तरीके अपनाना।
7. कम्प्यूटर सूचनाओं के भण्डारण और प्रक्रियाओं की मशीन है इसे मनुष्य की ही एक कृति से अधिक दर्जा न देना।
8. ज्ञान के प्रबन्धन में कम्प्यूटर को एक मशीन से अधिक दर्जा न देना।
9. इंटरनेट सम्पर्क और संचार का माध्यम है, कोई अलग किस्म का समाज बनाने का माध्यम नहीं। मायावी दुनिया की सीमाओं को पहचानना और उजागर करना।
10. लोकविद्या को विद्या का सम्मान देना।
11. लोकविद्या की सामाजिक प्रतिष्ठा के लिए कार्य करना।
12. लोकविद्या-धारक समाजों के प्रति सम्मान की दृष्टि रखना।
13. शिक्षा में लोकविद्या के समावेश के तरीके विकसित करना।
14. कला को केवल मनोरंजन का साधन बनाने का विरोध करना।
15. ज्ञान के शोषण की व्यवस्थाओं को उजागर करना और इस शोषण के विरोध के संघर्षों में शामिल होना।
16. व्यापार और बाजार के मार्फत किसानों और कारीगरों की विद्या के शोषण का विरोध करना।
17. लोकविद्या-धारक समाज अपनी विद्या का इस्तेमाल बिना रोकटोक कर सके इसकी हिमायत करना।

●

मिर्जापुर में किसान संगठन की स्थापना

डा० राम सागर सिंह, मिर्जापुर

20 जनवरी 87 का दिन था, लहुराबीर चौमुहानी पान की दुकान पर अचानक बड़े भाई राम अधार गिरि जी से मेरी मुलाकात हो गई। नमस्ते के बाद उन्होंने हमसे मिर्जापुर के समाजवादी साथियों का, एक-एक करके सबका हाल पूछा। बात बदलते हुए उन्होंने कहा डा० साहब हम लोग बहुत राजनीति किये, जिन्दगी बीत गई किन्तु किसानों का कुछ भी भला नहीं हुआ। राजनीति करने वाले सब हमें वोट बैंक समझ कर दोहन करते रहे, कभी किसानों का पुरसा हाल नहीं हुआ। उन्होंने कहा किसानों का एक अलग संगठन बनाकर उनकी लड़ाई लड़ी जाय। उनकी राय मुझे अच्छी लगी, हमने अपनी स्वीकृति दे दी।

आनन-फानन में गिरि जी के निर्देशन में दि० 25-1-87 को एक बैठक सम्पूर्णानन्द संस्कृत महाविद्यालय छात्र संघ भवन वाराणसी में बुलाई गई। दुर्भाग्यवश मिर्जापुर से केवल मैं ही बैठक में पहुँचा था, मेरे न चाहते हुए भी जिले को देखने का जुँआ मेरे कन्धों पर रख दिया गया। बैठक में सर्वसम्मति से संगठन का नाम 'पूर्वांचल किसान मजदूर समन्वय समिति' रखा गया।

कुछ ही समय बाद 23 मार्च 87 को मण्डलीय किसान रैली का आयोजन वाराणसी कमिश्नरी पर सम्पन्न हुआ, उसमें भी मैं अपने साथियों के साथ पहुँचा, वहाँ पर भी मेरा प्रतिनिधित्व रहा। इसके बाद लगातार पूर्वांचल किसान मजदूर समन्वय समिति की बैठकें होती रही। 11 अक्टूबर 87 को विल्थरा रोड बलिया में, 11 सितम्बर 88 हरिजन गुरूकुल आश्रम दोहरी घाट आजमगढ़ में, 27 सितम्बर 88 पुनः वाराणसी में। यहीं किसान संगठन के प्रति आस्था एवं रूझान शुरू हुअ। उस समय के साथियों में हरिशंकर सिंह, रामदेव सिंह, सोमनाथ त्रिपाठी, वृज राज तिवारी, एडवोकेट दिन पाल राय, दिनेश पाण्डेय, डा० रघुवंश मणि पाण्डेय, छेदी यादव एडवोकेट, करमुल्ला खान, शारदा सिंह और अभय शंकर भट्ट रहें। इसमें से बहुत से साथीं आज मेरे साथ नहीं हैं। सब मिलाकर मैं यहीं कहूँगा की इस महासभा एवं यात्रा के प्रेरणास्त्रोत हमारें गिरी जी ही रहें, जो आज भी हैं।

मैं तो नहीं रहा, किन्तु मुझे याद है कि अक्टूबर 88 में दिल्ली वोट क्लब पर चौधरी महेन्द्र सिंह टिकैत की अगुवाई में लाखों किसानों की धरना हफ्तों चला वह अपने आप में एक इतिहास है। उसी स्थल पर पूर्व प्रधानमंत्री स्व. इन्दिरा गांधी की बरसी मनायी जाने वाली थी। पानी की सप्लाई रोक दी गयी। सफाई कर्मियों को सफाई करने से रोक दिया गया। किसानों को खाद्यान्न (रसद) जो जीपों, ट्रैक्टरों, ट्रकों द्वारा बाहर से आ रहा था, रोका गया। सभी रास्ते सील कर दिये गये कि भूख से किसानों में भगदड़ मच जायेगी वह भागने लगेंगे। किन्तु ऐसा नहीं हुआ। दो बूढ़े किसान भयानक शीतलहरी से मर भी गये, वही पर उनका दाह संस्कार भी कर दिया गया। उसी समय प्रधानमंत्री राजीव गांधी व पायलट धरना स्थल पर आये। घास पर बैठकर आमने-सामने किसान प्रतिनिधियों से वार्ता हुई, तब कहीं धरना समाप्त हुआ, लोग घर लौटें। वहीं बोट क्लब पर ही चौधरी महेन्द्र सिंह टिकैत का पूर्वांचल के 12 जिलों के दौरे का निर्णय ले लिया गया। आनन-फानन में हमें और अभय शंकर भट्ट जी को खबर मिली कि मिर्जापुर में दो प्रोग्राम 14 नवम्बर 88 को टिकैत जी का ले लिया गया है। एक सरदार पटेल इण्टर कालेज, कोलना में 12 बजे और दूसरा किसान इण्टर कालेज, राजगढ़ में सायं 4 बजे।

19 जनवरी 89 चन्दौली तहसील मुख्यालय पर भा० कि० यू० की एक बहुत भारी सभा हुई थी, वहीं पर चौधरी महेन्द्र सिंह टिकैत के निर्देशन पर अपने समस्त साथियों की राय से पूर्वांचल किसान मजदूर समन्वय समिति का भारतीय किसान यूनियन में विलय कर दिया गया। तदुपरान्त 27 फरवरी 89 को पराड़कर स्मृति भवन, मैदागिन, वाराणसी के कार्यकर्ता सम्मेलन में पूर्वांचल किसान मजदूर समन्वय समिति के भा० कि० यू० में विलय की घोषणा की पुष्टि कर दी गयी। तब से मैं निरन्तर मिर्जापुर में भा० कि० यू० का पौध लगाकर उसकी सेवा कर रहा हूँ।

अभी तक जनपद के आधे ब्लाकों का ही गठन हो पाया है। जिसमें करीब 270 गाँव के ही लोग आज किसी तरह जुड़े हुये हैं। फिर भी किसानों के प्रयास से हर धरना प्रदर्शन में 2-4 हजार खेतिहर जुट जाते हैं। लगभग चार बार महात्मा चौ0 महेन्द्र सिंह टिकैत जिले में किसानों का हौसला बढ़ाने आये हैं । यूनियन का जिला प्रशासन पर भारी-भरकम दबाव है। अधिकारी यूनियन के सामने घुटना टेक देते हैं। इस पूरे दौर में मिर्जापुर में भारतीय किसान यूनियन की एक अच्छी टीम तैयार हुई। आज राजेन्द्र शास्त्री यूनियन के उत्तर प्रदेश के प्रमुख महासचिव हैं। सिद्धनाथ सिंह प्रदेश कार्यकारिणी के सदस्य हैं, प्रहलाद सिंह मिर्जापुर मण्डल के अध्यक्ष हैं और अली ज़मीर खाँ मिर्जापुर के जिलाध्यक्ष हैं।

●

मिर्जापुर में भा०कि०यू० की उपलब्धि एवं प्रमुख संघर्ष

1. 13 मार्च 1991 को विन्ध्य की धरती विकास खण्ड राजगढ़ के सोनपुर गाँव में चौधरी महेन्द्र सिंह टिकैत का पुनः आगमन व आम सभा।
2. 10 सितम्बर 93 को सोनभद्र सोन लिफ्ट पम्प को चालू करने के लिये सैकड़ों ट्रैक्टर व अन्य वाहनों के साथ हजारों किसानों का कारवां चल पड़ा। चलते-चलते अपने आप हिंगुवारी मोड़ पर जहाँ मीरजापुर-सोनभद्र-वाराणसी त्रिभुज मिलाप होता है ,चक्का-जाम हो गया। अन्त में जिलाधिकारी एवं कमिश्नर के आने पर ही समझौता के दौरान धरना उठा लिया गया।
3. 10 फरवरी 94 डंकल प्रस्ताव के विरोध में जिला मुख्यालय पर 120 ट्रैक्टर ट्रालियों के साथ हजारों-हजारों की भीड़ उमड़ पड़ी।
4. 6 जुलाई 94 को खाद के दाम में बेतहाशा 30% वृद्धि के विरोध में जिला मुख्यालय पर व्यापक प्रदर्शन व आम सभा।
5. 14 सितम्बर 95 से 26 अक्टूबर 95 तक बिजली विभाग की मनमानी और कटौती को लेकर अहरौरा विद्युत सब स्टेशन पर 42 दिनों का लगातार धरना, बिजली की सप्लाई शुरू हुई, तब कहीं जाकर जाम व धरना हटा।
6. 17 नवम्बर 95 को मिर्जापुर के चुनारगढ़ के किले के पास गंगा जी के किनारे चुनार सिमेंट फैक्टरी के विशाल ग्राउण्ड पर भारतीय किसान यूनियन की महासभा (रैली) आयोजित की गई थी जिसमें सेकड़ों ट्रैक्टर, जीपों एवं अन्य वाहनों से भारी संख्या में लोग पहुँचे थे। आज तक पूर्वांचल की किसी भी रैली व आम सभा में इतनी बड़ी भीड़ कभी नही देखी गई।
7. 25 मार्च 96 नरायनपुर (अहरौरा रोड) के पास रेलवे का लोहवा पुल नं. 469 को 2 मीटर गहरा और तीन मीटर चौड़ा करने के लिए लगातार 62 दिनों का धरना चला। लोहवा का पुल जिस समय बना था बहुत सँकरा था जिसके चलते जमालपुर ब्लाक क्षेत्र की हजारों एकड़ जमीन पानी की निकासी न होने से जल मग्न हो जाती थी, किसानों की लहलहाती हुई धान की फसलें डूब कर नष्ट हो जाती थी। अंत में रेलवे विभाग व बन्धी सिंचाई विभाग ने मिलकर उक्त पुल चौड़ा और गहरा किए।
8. 25 फरवरी 97 से 11 मार्च 97 तक पलेवा रेट का विरोध हुआ। इस समय किसानों के ऊपर कुल मिलाकर 27 प्रकार के टैक्स थे। जिलाधिकारी महोदय ने मटर, मसूर, चना, खेसारी तथा परती जमीन में पानी चल जाने पर भी पलेवा रेट लगा दिया था। भा0 कि0 यू0 ने जबरदस्त प्रदर्शन कर तहसील मुख्यालय पर धरना लगा दिया। यह धरना 15 दिनों का चला। व्यापक प्रचार के साथ 11 मार्च को ट्रैक्टर-ट्रालियों से किसान आये। तहसील में ताले लगाने का ऐलान कर दिया गया। प्रदेश से दो-दो प्रदेश अध्यक्ष भानु प्रताप सिंह व राजेश चौहान जी भी आ गये। भारी जनसंख्या के बीच सरकार को झुकना पड़ा और पलेवा रेट वापस लिया गया।
9. 21 दिसम्बर से 31 दिसम्बर 2003 अहरौरा बाजार में धान की खरीद पर धरना दिया गया। पचासों ट्रैक्टर ट्राली धान लदे कई दिनों से पड़े थे, किसान शीतलहरी से धान केन्द्र पर धान लाकर परेशान थे। बारी-बारी कईयों को बंधक बनाया गया। तब कहीं धान क्रय-केन्द्र पर काँटा लगा और धान की खरीद शुरू हुई। फिर धरना समाप्ति की घोषणा हुई।
10. 8 मार्च 2006 को सूखा पीड़ित किसानों को लेकर चुनार तहसील मुख्यालय पर व्यापक प्रदर्शन हुआ। मांग थी किसानों के जो फसल सूख गये हैं, उनको उचित मुआवजा मिले, मजदूरों, कलाकारों को राहत कार्य के बदले अनाज दिया जाय। इसके साथ अन्य क्षेत्रीय माँगें थी।
11. 8 जुलाई 2008 को चुनार तहसील मुख्यालय पर किसानों का विराट प्रदर्शन-माँग थी बाण सागर नहर परियोजना तृतीय चरण के तहत जरगो बाँध से हुसैनपुर बीमा को जोड़ा जाय। जिससे लगभग 15 हजार हेक्टयर अतिरिक्त भूमि की सिंचाई होगी, उससे हजारों किसान लाभान्वित होंगे तथा देश को अनाज मिलेगा।
12. 27 मार्च 2010 से 12 अप्रैल 2010 अहरौरा विद्युत सब स्टेशन पर किसानों का व्यापक प्रदर्शन के बाद अनिश्चितकालीन धरना। माँग थी बिजली विभाग की मनमानी एवं गुण्डागर्दी, पुनः पलेवा रेट लगना, चकबंदी की चकमाबंदी, धौवा और बड़ा गाँव कान कास्ट फैक्टरी जो रात दिन कच्चे धुएँ उगल रही है वहाँ के लोगों और पशु-पक्षियों का जनजीवन खतरे में है, आदि के सम्बन्ध में। यह धरना अंत में सक्षम अधिकारी के अश्वासन पर उठा लिया गया।

डा० राम सागर सिंह, मिर्जापुर

घड़रोजों की समस्या का हल

वाराणसी के किसानों ने बनाया दबाव

ग्राम सुल्तानीपुर, खण्ड चोलापुर, जिला वाराणसी में भारतीय किसान यूनियन की किसानों के साथ 25 मई 2010 को प्राइमरी पाठशाला में एक बैठक हुई। इस बैठक में क्षेत्र की दो प्रमुख समस्याओं पर चर्चा हुई। पहला, सुल्तानीपुर न्याय पंचायत के सभी गाँवों में घड़रोज की समस्या और दूसरा शारदा सहायक नहर में आठ सालों से पानी का न आना। इसी सभा में 28 किसानों ने भा०कि०यू० की सदस्यता ग्रहण की।

लगभग 50 किसानों की भागीदारी से हुई इस बैठक की अध्यक्षता भगवती सिंह ने की। बैठक में समस्याओं को प्रस्तुत करते हुए विनोद चौबे ने कहा कि दलहन की फसलें घड़रोजों की वजह से नष्ट हो रही हैं। इसके चलते सरकार कई लाख टन दाल आयात कर रही है। सरकार घड़रोज की समस्या को किसानों की निजी समस्या मान रही है और किसानों को ही इस समस्या से निपटने के लिए कहती है। संसद और विधान सभाओं में इस समस्या पर चर्चा भी हुई है, लेकिन कोई निर्णय नही हुआ है। सरकार कोई पहल नही ले रही है। प्रदेशस्तरीय व जिला स्तर की वार्ताओं में शासन-प्रशासन यह कहता रहा है कि किसान खुद अपनी लाइसेंसधारी बंदूक पर परमिट लेकर घड़रोज को मार सकता है। लेकिन पहल लेने के प्रति आश्वस्तता नही प्रदान की जाती। किसानों के सामने दो ही रास्ते हैं। एक तो घड़रोजों को पकड़कर वन विभाग को सुपुर्द कर दे, जैसा कि नेवादा गाँव के लोगों ने किया है या दूसरा यह कि यह आम सहमति बनायें कि घड़रोजों को मार दिया जाय। जिलाधिकारी से मिलकर इस बात पर दबाव बनाया जाय कि सरकार अपनी फोर्स लगाकर घड़रोजों को समाप्त करे।

मोहनदासपुर के गोरखनाथ चौबे ने कहा कि समस्या का निदान एक दो लोगों की पहल से नही होगा। एकजुट होने की जरूरत है।

भा०कि०यू० वाराणसी जिला अध्यक्ष लक्ष्मण प्रसाद मौर्य ने कहा कि किसानों को संगठित होने की जरूरत है और भारतीय किसान यूनियन के सदस्य बनें तो इस समस्या को हल करने का रास्ता बनेगा। नहर में पानी आये इसके लिए भी यूनियन के मार्फत दबाव बनाया जा सकता है।

ग्राम जुटहाँ के विजय शंकर सिंह ने कहा कि समय की माँग व ज़रूरत को ध्यान में रखकर हम सभी को आज यह निर्णय लेना चाहिए कि जिसके पास लाइसेंस वाली बंदूक हो उसे प्रशासन की ओर से परमिट प्राप्त कर घड़रोजों को मारने का अभियान शुरू करना चाहिए। यह परमिट अब खण्ड विकास अधिकारी भी दे सकता है। उसे यह अधिकार मिला हुआ है। अतः इस प्रक्रिया को शुरू किया जाय। सभा में इसकी आम सहमति बनी। और भा०कि०यू० से यह अपील की गयी कि सरकार पर पहल लेकर घड़रोज समस्या के हल के लिए दबाव बनाया जाए।

सभा में मनोज चौबे (मोहनदसपुर), शीतला प्रसाद सिंह (कैथोर), विजय शंकर (खुटहाँ), महेन्द्र प्रताप सिंह (रसड़ा), विनोद कुमार सिंह (सुलतानीपुर), जितेन्द्र प्रताप सिंह (कदवां), प्रभाकर चौबे (करमा) को अपने-अपने क्षेत्र से भा०कि०यू० की अगुवाई करने की जिम्मेदारी सौंपी गयी।

●

विनोद कुमार चौबे

चन्दौली में जमीन अधिग्रहण के सवाल पर किसान पंचायत

25 मई 2010 को दोपहर 1.00 बजे से भूपौली, चन्दौली में भारतीय किसान यूनियन वाराणसी मण्डल के अध्यक्ष जगदीश सिंह यादव की अध्यक्षता में सैकड़ों किसानों के साथ पंचायत सम्पन्न हुई। भूपौली में 132 के0 वी0 सब-स्टेशन बनाने के लिए किसानों की जमीन का अधिग्रहण न किया जाय इस आवाज को बुलन्द करने के लिए यह पंचायत की गयी।

इसमें कुल 24 किसानों की जमीनें जा रही हैं। जिन किसानों की जमीनें जा रही हैं वे सभी छोटे किसान हैं। इनकी जमीनों के जाने बाद उन किसानों के पास रहने के लिए भी जमीनें नही बचेंगी, जिसके कारण उन सभी किसानों का विस्थापन हो जायेगा। किसानों की जितनी जमीनें सब-स्टेशन के लिए अधिग्रहण करने की बात है, उससे अधिक जमीनें पम्प नहर के पास पहले से बेकार पड़ी हुई है। विद्युत विभाग उन जमीनों पर सब-स्टेशन क्यों नहीं बनाता है? इससे खाली पड़ी जमीनों का सही ढंग से उपयोग हो जायेगा और किसानों की जमीनें भी बच जायेंगी।

आगे वक्ताओं ने कहा कि चन्दौली में भारतीय किसान यूनियन ने बिजली, पानी, खाद, बीज और जमीन अधिग्रहण के खिलाफ लड़ाईयाँ लड़ी हैं। चन्दौली किसान संघर्षों की स्थली है। यहाँ के किसानों ने अपने अधिकारों के लिए शहादत भी दी है। भूपौली का किसान किसी भी कीमत पर अपने जीते जी अपनी जमीन नही देगा।

पंयायत के अन्त में यह निर्णय लिया गया कि जमीन अधिग्रहण के सवाल पर पहले प्रेस-कान्फ्रेंस बुलायी जाये उसके बाद शासन-प्रशासन को पत्र भेजकर यह सूचित किया जाय कि किसान अपनी जमीन नहीं देगा। प्रशासन द्वारा यदि जमीन के सम्बन्ध में कोई भी प्रक्रिया चलायी गयी तो उसके विरोध में भारतीय किसान यूनियन आन्दोलन करने के लिए बाध्य होगा।

पंचायत में जगदीश सिंह यादव, गाजीपुर जिला अध्यक्ष बाबूलाल मानव, दिलीप कुमार दिली, वाराणसी जिला सचिव सन्तोष कुमार संविज्ञ, वीरेन्द्र कुमार यादव, अवधू पाण्डेय, सुल्तान अहमद इत्यादि प्रमुख लोगों ने विचार व्यक्त किये।

पंचायत का संचालन रामनगीना शर्मा ने किया।

●

संतोष कुमार संविज्ञ

बिरहा : एक बरसती आवाज - बरसाती राजभर

बरसाती राजभर

बनारस में नागपंचमी का त्यौहार लोकसंगीत की बहार लेकर आता है। जगह-जगह सड़कों पर मंच बनाकर रातभर बिरहा के दंगल चलते है। ऐसे ही एक मंच से एक खनकती आवाज बरस रही है। गायक हैं बरसाती राजभर।

सुलतानपुर, खण्ड चिरईगाँव, जिला वाराणसी के रहने वाले बरसाती जी ने बहुत छोटी उम्र से गाना शुरू किया। बिरहा के प्रसिद्ध गायक सरजू जी से इन्होंने गाने की कला को हासिल किया। ये 1962 से ही मंचों पर गा रहे हैं। ये हर तरह का लोकसंगीत गाते हैं जैसे- कजरी, मिर्जापुरी कजरी, छपरहिया गीत, बिरहा, खेमटा, चैती, दादरा, कहरवा आदि। इसमें सभी तरह के गीत होते हैं जैसे- धार्मिक, भक्तिपूर्ण, निर्गुण, सामाजिक आदि।

बरसाती जी का सबसे लोकप्रिय गायकी का प्रकार है राजभर समाज का इतिहास। ये इसे गाकर सुनाते हैं। इस समाज के इतिहास में जो उतार चढ़ाव आये हैं, जो गौरवपूर्ण घटनायें घटी हैं और आज राजभर समाज की जो स्थिति है उसका वर्णन अपनी दर्दभरी खनकती आवाज में मंच से जब वे गाते हैं, तो श्रोता भाव-विभोर हो जाते हैं। उन्होंने कहा कि इसी तरह वे भगत सिंह, महात्मा गांधी, सुभाष चंद्र बोस, खुदीराम बोस, मंगल पाण्डेय जी की जीवनियाँ भी गाते हैं। अभी हाल ही में बुद्ध पूर्णिमा के अवसर पर सारनाथ में उन्होंने बुद्ध जीवनी को गाया। इस पर उन्हें सम्मानित भी किया गया।

इनके गायन में हमेशा चार-पाँच कलाकारों का समूह रहता है। एक हारमोनियम बजाने वाले, एक ढोलक बजाने वाले, और दो साथ देने वाले। इनके साथियों में हर धर्म और जाति के लोग हैं। ये किसी भी कार्यक्रम में साथ में ही जाते हैं। चाहे बनारस में हो या बाहर, आकाशवाणी हो या दूरदर्शन पर। अभी तक कलकत्ता, लखनऊ, दिल्ली, पटना आदि कई शहरों में अपना कार्यक्रम दे चुके हैं। कई पुरस्कारों के धनी बरसाती जी ने कहा कि लोक संगीत की लोकप्रियता बढ़ी है, घटी नही है। युवाओं में गाने वाले भी बढ़ रहे हैं। महिलायें भी गाने लगी हैं।

बरसाती जी ने बहुत विश्वास के साथ कहा कि हम अपने बिरहा को नही बेचते हैं। उन्होंने एक वाकया सुनाया। ''कई साल पहले कुछ लोग हमारे यहाँ आये थे और हमारे गाने के लिए रूपये देने की बात कर रहे थे। कोई कम्पनी के लोग रहे होंगे। हमने उनको मना कर दिया। उनको कहा कि हम अपना बिरहा नही बेचेंगे।'' बरसाती जी ने जोर देकर कहा कि वे अपने गाने में हल्के और गंदे शब्दों का इस्तेमाल नहीं करते हैं। यह ऊँची कला है, और उसकी पवित्रता का ख्याल रखा जाना चाहिये। आजकल कई लोग हल्के शब्दों का इस्तेमाल करते हैं, यह बुरी बात है।

बरसाती जी की सी.डी. कैसेट बाजार में नही आई है। इसके प्रति उनके मन में कोई विशेष आकर्षण नही है। उनका कहना है कि अगर कोई चोरी से रिकार्ड करके बेचे तो हम क्या कर सकते हैं। इस बात पर उनकी सहमति रही कि आजकल लोक गायकों के हुनर से रिकार्डिंग कम्पनियाँ कमाने लगी हैं और गायकों को बहुत कम हिस्सा देते हैं। कलाकार क्या करें?

अन्त में उन्होंने यह कहा कि शास्त्रीय संगीत से किसी भी पक्ष में हमारा लोक संगीत कम नही है। हमारे गायन में दस गुना रस है।

लोक संगीत को बढ़ावा मिलना चाहिए और इसके कलाकारों और कला प्रस्तुति के अवसरों को बढ़ावा मिलना चाहिए।

गीता सिंह व रामअंचल वर्मा

पेज 5 का शेष..

टेंगरा का ...

जोतत हईं।'' किसान कहलेस ''नाहीं बचवा तोहसे न होई,'' टेंगरा कहलेस ''नाहीं बाऊ, हम करत हईं न, तू अराम से खा ला।''

टेंगरा हल जोते शुरू कर देहलेस। एतने में राजा अपने सिपाही के साथे उधर से जात रहलन। राजा हल-बैल देखके रूक गईलन, अऊर कहलन कि इतना सुन्दर हल-बैल ईहाँ का करत हौ? एके त हमरे पास में रहे के चाही। राजा अपने सिपाही से कहलन की ''ई हल बैल लियावा अऊर अपने साथे ले चला।'' सिपाही जालन अऊर हल बैल टेंगरा से छिन लियावलन। राजा क सिपाही हल-बैल लेके महल चल जालन। जब किसान खाना खा के खेत पर आयल त टेंगरा उन से कुल हाल कहलेस। त किसान कहलेस कि जाय दा राजा से हमने लड़ाई भी ना ले सकिला, चला जाये द।

टेंगरा गुसिया के कहलेस ''नाहीं बाऊ, हम त हल-बैल राजा से वापस लेही आईब। तू चला घरे, हम राजा से जात हई लड़ाई लेबे।'' किसान कहलेस ''तू मानत ना हऊआ त जा'' किसान घर चल गयल। टेंगरा सीक जूटा के ओकर गाड़ी बनऊलस अऊर चल देहलस राजा के महल के तरफ। जात-जात रास्ते में मूस मिलला। मूस टेंगरा से पूछलेस कि अरे टेंगरा भाई, कहाँ जात हऊआ? टेंगरा कहलेस.....

''सीकियाँ मैं चीरी-चीरी गड़िया बनऊली प्यारे,
राजा ससुर मोरा बैलवा चोरऊलन प्यारे
उनसे लड़ईया लेवे जात जी।''

मूस कहलस कि ई त राजा बहुत गलत काम कईलन। चला हमहूँ तोहरे संगे चलत हईं। टेंगरा मूस के अपने गाड़ी में जोड़ देहलेस। अब दूनों आगे बढ़े लगलन। जात-जात ओन्हें रस्ते में चींटी मिललिन, चींटी पूछलीन ''का टेंगरा भाई, कहाँ जात हऊआ?'' फिर टेंगरा कहलेस.....

''सीकियाँ मैं चीरी-चीरी गड़िया बनऊली प्यारे,
मुसवा लदनिया लेहले जात जी
राजा ससुर मोरा बैलवा चोरऊलन प्यारे
उनसे लड़इया लेवे जात जी।''

चींटी कहलेस ''राजा ई त बहुत गलत काम कइलन। आज तोहरे साथे कइलन कल हमनो के साथे करिहन। राजा के सबक सिखावल जरूरी हौ। चला, हमहूँ चलत हईं।'' अब चींटी भी टेंगरा के साथे चल देहलस।

जाते-जाते बिच्छू मिलल। बिच्छू भी टेंगरा से पूछलेस अरे टेंगरा भाई ई टीम के लेके कहाँ जात हऊआ? टेंगरा कहलेस.....

''सीकियाँ मैं चीरी-चीरी गड़िया बनऊली प्यारे,
मुसुआ लदनिया लेहले जात जी
राजा ससुर मोरा बैलवा चोरऊलन प्यारे,
उनसे लड़इया लेवे जात जी।''

बिच्छू कहलेस ''राजा तोहरे साथे बहुत अन्याय कइलन। हम लोग अब मिल के सबक सिखावल जाई चला हमहूँ तोरे साथे चलत हईं।'' बिच्छू भी उन सब के साथे चल देहलेस।

फिर जाते-जाते डण्डा मिलल डण्डा भी ओही बात पूछलेस। अरे टेंगरा भाई कहाँ जात हऊआ? टेंगरा कुल कथा सुनउलेस। कुल कथा सुन के डण्डा कहलेस की हमहूँ तोहरे संगे चलत हईं।

चलते-चलते आगे रस्सी मिलल। कुल कथा सुन के रस्सी भी टेंगरा के साथे चल देहलेस।

अब पूरी टीम महल के तरफ बढ़े लगल। महल के दरवाजे पर पहुँच के टेंगरा द्वारपाल से राजा के खबर भेजवउलेस। ''जाके कह दा टेंगरा आयल हौ, ऊ आपन हल-बैल मांगत हौ। हमार हल-बैल हमके वापस कर दा, नाहि त हम से लड़ाई लेवे के तइयार हो जा।'' द्वारपाल जाके ई खबर राजा के सुनावला। राजा गुस्से में कहलन ''ऊ छोटा टेंगरा क इतना हिम्मत कि ऊ हमसे लड़ाई लेही?''

राजा अपने सिपाही के कहलन जाओ ''उन लोगों को हाथी खाने में बन्द कर दो।'' सिपाही टेंगरा अऊर उनके साथिन के पकड़के हाथी खाने में डाल देहलन।

टेंगरा बिच्छू से कहलेस ''बिच्छू भाई तू आपन चाल दिखावा।'' बिच्छू सब हाथी के काट-काटके बेहोस कर देहलन। सबेरे राजा अपने सिपाही से कहलन, ''जा देखा, ऊ सबन क का हाल हौ।'' सिपाही जाके देखलन, हाथी खाने में सब हाथी बेहोस पड़ल रहलन। सिपाही राजा से जाके कहलन ''अरे राजा साहब टेंगरा अऊर ओकर साथी ठीक-ठाक हयन, आपन सब हाथी बेहोस हयन।''

इधर टेंगरा भी राजा के सनेसा भेजवउलस कि टेंगरा तोहसे लड़ाई लेवे के तइयार हौ। राजा अपने सिपाहीयन के टेंगरा से लड़ाई लेवे के भेजलन। इधर टेंगरा मूस से कहलस ''मूस भाई तू भी आपन चाल दिखावा।'' ओकरे बाद मूस अपने साथिन के संगे जमीन के अन्दर-अन्दर घुस के जमीन के पोल कर देहलन।

उधर राजा के सिपाही घोड़ा दउड़ावत टेंगरा के तरफ बढ़त आवलन। पोल जमीन में घोड़ा क पाओं धस जाए से सब सिपाही एक पर एक गिर जालन। टेंगरा रस्सी अउर डण्डा से कहलेस तू दूनों जने आपन चाल दिखावा। ओकरे बाद रस्सी सब सिपाही व घोड़न के बांध देवेला अउर डण्डा सबे पर बरसे लगेला। कुछ सिपाही घायल अऊर कुछ मर जालन।

एक सिपाही भाग के राजा के लग्गे गयल अऊर सब हाल कहलेस। राजा ई सब सुनके कहलन ''अईसन बात हौ, त तू हमार हाथी निकाला, अब हम टेंगरा से लड़ाई लेबे चलत हईं। तब राजा हाथी पर बइठ के टेंगरा व उनके साथी के ओर चललन। टेंगरा चींटी से कहलेस ''चींटी बहीन तू आपन चाल दिखावा।'' सब चींटी हाथी के सूँड़ में घुस के काटे सुरू कर देहलिन। हाथी पगला गयल अऊर राजा के पटक के भाग गयल। लड़ाई में राजा क हार भयल अऊर राजा टेंगरा से माफी मंगलन, टेंगरा क हल-बैल लउटा देहलन। टेंगरा खुशी-खुशी आपन हल-बैल अऊर सथियन के संगे घर लउट आयल।

टेंगरा के संगे हल-बैल वापस देख के किसान अउर ओकर मेहरारू बहुत खुस भइलन। सही कहल बा कि एकता में बड़ी सक्ति हौ। दुनिया में केहू छोट अ कमजोर ना हौ। सबके पास कोई न कोई बिद्या हौ। अउर ओही बिद्या में ओनकर सक्ति हौ। सोसित अउर न्याय चाहे वाले लोग एक हो जाय त पता नाही केतनन राजा के सिंहासन छोड़ के भागे के पड़ जाई। ●

कुँओं को जीवंत करने वाले कारीगर

कुँओं के लिए पानी के जगह की खोज, कुँओं की खुदाई, कुँओं की मरम्मत और सफाई, आदि कामों को करने के कुशल कारीगर लगभग हर गाँवों में होते हैं। विद्या आश्रम, सारनाथ और भारतीय किसान यूनियन वाराणसी के संयुक्त प्रयास से इन कुशल कारीगरों का एक चिंतन शिविर आयोजित किया जा रहा है। इस शिविर में निम्नलिखित मुद्दों पर चिंतन होगा।

1. पर्यावरण व पानी के वर्तमान संकट को देखते हुए कुँओं के कारीगरों के ज्ञान को प्रतिष्ठा और उनके रोजगार को सुनिश्चित करने के प्रयास हों।
2. कुँओं के निर्माण के कारीगरों का एक संगठन बने और उन्हें ग्रामीण जल-व्यवस्था का अंग बनाया जाय।
3. गाँव-गाँव में रहने वाले कुँओं के कारीगरों का पंजीकरण हो।

यह चिंतन शिविर 30 जुलाई को विद्या आश्रम पर सुबह 11.00 बजे से शाम 3.00 बजे तक चलेगा। इस शिविर में कारीगरों की एक सूची बनाकर शासन को दी जायेगी।

इस सूचना को पढ़ने वाले यदि कुँए के करीगरों को जानते हों तो उन्हें विद्या आश्रम भेजें।

आज सहज साहित्य अभियान की दरकार है

जैसे-जैसे साहित्य पर विश्वविद्यालयीय विद्या की पकड़ मज़बूत होती गयी है वैसे-वैसे वह सामान्य लोगों से दूर होता गया है। सामान्य जन की संवेदनायें, मूल्य और पीड़ायें समाज में सत्य के पक्ष में बदलाव लाने वाले विचारों का आधार होती हैं। साहित्य इन्हें वाणी देता है। आज अमेरिकी साम्राज्य अपने आक्रामक विस्तार पर आमादा है और युद्ध, बाजार व तकनीकी के राक्षसी व मायावी रूपों को आकार देता जा रहा है। इसके चलते सामान्यजन के दुःख व शोषण के नये रूप अस्तित्व में आ चुके हैं। बदलती परिस्थितियाँ मनुष्योचित समाज के निर्माण में लगे लोगों के सामने तरह-तरह के भ्रम पैदा कर रही हैं। सहज साहित्य इस भ्रम जाल को सरलता से हटाने का सक्रिय ज्ञान-कर्म है। अपने समय के सहज साहित्य में सत्य का आग्रह सरलतम रूपों में सामने आता है। आज सहज साहित्य के निर्माण के एक प्रभावी आन्दोलन की जरुरत है। शायद कला के सभी रुपों में, नृत्य, नाट्य, सिनेमा, चित्रकला आदि सभी में ऐसे आन्दोलन की जरूरत है।

साहित्य और कला विद्या का वह रूप है जो किन्हीं विशिष्ट व्यक्तियों की निजी विद्या नहीं होती। बल्कि सामान्य मनुष्य की जीवन दृष्टि का मूर्त रूप होती है। प्रत्येक मनुष्य (स्त्री व पुरूष) में कला का कोई न कोई रूप अवश्य होता है। इसी के बल पर कला प्रत्येक मनुष्य को ज्ञान (विद्या) के क्षेत्र में सीधे दखल ले पाने की सहज क्षमता प्रदान करती है। सूचना युग में जब ज्ञान (विद्या) के संगठित क्षेत्रों से सामान्यजन स्त्री व पुरूष, बाहर खदेड़े जा रहे हों तो ऐसे में सहज साहित्य सामान्य मनुष्य को विद्यागत दखल लेने का अधिकारी होने की मान्यता देता है।

समय-समय पर सहज साहित्य के अलग-अलग अंगों पर और समग्र में भी, अनेक लोगों ने विचार रखे हैं और समाज में सहज साहित्य की धारा को प्रबल बनाने का आग्रह रखा है। कबीर का ज्ञान का हाथी सहज का दुशाला डाले हुए है। गांधी की दृष्टि में विद्वत्ता की तुलना में 'सहज बुद्धि' की श्रेष्ठता कदम-कदम पर उद्घाटित होती जाती है। धर्म, अध्यात्म, कला, राजनीति, अर्थनीति जैसे जटिल क्षेत्रों में उन्होंने विद्वत्ता की जगह सहज बुद्धि की पुरजोर वकालत की और उसे मनुष्य की सक्रियता का बुनियादी व शुद्धतम पक्ष जताया। हजारी प्रसाद द्विवेदी का 'सहज भाषा' का चिंतन और चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' का बोलचाल की भाषा को शुद्ध भाषा का दर्जा देना सहज और लोकस्थ साहित्य के विकास के मार्ग की सभी कृत्रिम बाधाओं को नेस्तनाबूत करने में महत्वपूर्ण कदम माना गया है। प्रेमचंद ने सामान्य जीवन को कथावस्तु का आधार बनाया और भाषा व शैली की सहज विधाओं को स्थापित किया, यह निर्विवाद रुप से हिन्दी साहित्य का युगान्तरकारी कार्य माना गया है। नामवर सिंह का पाठक की 'सहज दृष्टि' को श्रेष्ठ सृजनशील समीक्षक का दर्जा देना भी एक सहज साहित्य की परम्परा को उजागर करता है।

सहज साहित्य की यह परम्परा लोक और साहित्य के बीच की दूरी को कम करने का आधार **सामान्य जन के ज्ञान (लोकविद्या)** में देखती है। सामान्यजन के ज्ञान के उस प्रकार में देखती है जो लोकपहल और लोकशक्ति के रास्ते खोलता है। आज समाज में इस परम्परा के उद्घाटन बिन्दुओं व धाराओं की पहचान आवश्यक है। दुनिया के शासक वर्ग ज्ञान आधारित समाज के निर्माण का उद्घोष कर रहे हैं और सामान्यजन के ज्ञान के अपहरण की व्यवस्थायें बना रहे हैं। ऐसे में ज्ञान (विद्या) और लोकपहल व लोकशक्ति के बीच के रिश्तों पर प्रहार निरंतर बढ़ते ही जा रहे हैं। सवाल है कि सामान्यजन न्याय के लिए, संगठन व संघर्ष के लिए किस ज्ञान को आधार बनायें? सामान्यजन, सृजन और साहित्यकार के बीच के रिश्ते के ज्ञानगत प्रकार कैसे हों? इनके बीच की दूरी कैसे कम हो? सहज साहित्य इन्हीं सवालों का जवाब खोजने के सामाजिक चिंतन का साहित्यिक अभियान है।

डा० चित्रा सहस्त्रबुद्धे

लोकविद्या पंचायत, मासिक समाचार पत्र, विद्या आश्रम (सा 10/82 ए, अशोक मार्ग, सारनाथ, वाराणसी-221007) की ओर से **डा.चित्रा सहस्त्रबुद्धे** द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित।
website : vidyaashram.org **Blog :** lokavidyapanchayat.blogspot.com **e-mail :** vidyaashram@gmail.com
प्रेस : **सत्तनाम प्रिण्टर्स**, एस-1/208 के-1, नई बस्ती, पाण्डेयपुर, सारनाथ रोड, वाराणसी-221002